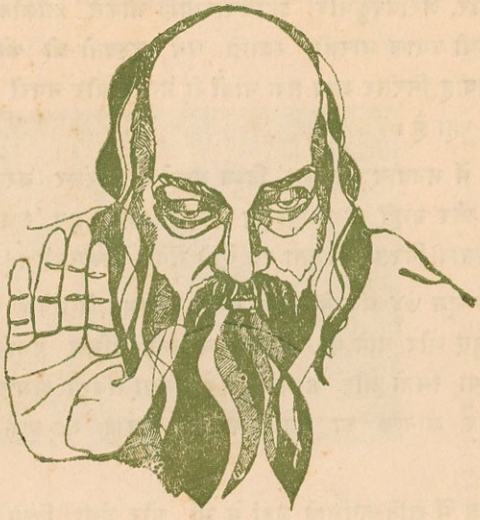

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युगवेद

मई-जून १९७४

(केवल इस अंक का)
मूल्य : दो रु०

युक्रांद

प्रथम पांच वर्षों की साधनामय समाप्ति पर : *भगवत् शुभाकांक्षायें*

भगवान श्री रजनीश की अनन्त जीवन क्रांतिदर्शी वाणी को 'युक्रांद' के माध्यम से पहुंचाने की भगवत् प्रेरणा 'युक्रांद' के आधार प्रेरणा-स्रोत मित्रों अजितकुमार, अरविंदकुमार, श्यामनारायण चौकसे, आलोक पांडे, भीकमचंद जैन, स्वामी दयाल भारती, स्वामी धर्म सरस्वती जी को हुई और यह अविरल प्रवाह निरंतर आप तक गांवों से नगरों और नगरों से महानगरों तक बहता आ रहा है।

इस प्रवाह में भगवान श्री का दिव्य आशीष निरंतर बरसता रहा है जो अखण्ड है और उन्हीं की वाणी का भगवत् प्रसाद हम सब निरंतर बांट रहे हैं। यह प्रसाद निरंतर मिलता रहे ऐसी मंगल कामना है।

'युक्रांद' के जून ७४ अंक के साथ हमारे प्रकाशन के प्रथम पांच साधना मय वर्ष पूर्ण हुए और आगे की अनन्त अनजानी मंजिल हमारे सामने है : जो भगवत् कृपा, मित्रों और साधकों के प्रेम तथा सबकी शुभाकांक्षा से फलेगी-फूलेगी और आनन्द का यह प्रेम-बीज विराट बट-वृक्ष में परिणित हो पाएगा।

इस महायज्ञ में जाने-अनजाने जहां से भी और जैसा दिव्य सहयोग मिला है उसका तो कोई मूल्य शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। इसी महान् गौरवमय शृङ्खला में हमारे अंतरंग मित्रों की महती कृपा-दृष्टि रही है जिनसे सदैव किसी न किसी रूप में प्रेरणा मिलती आई है। यथा : श्री ईश्वर भाई, मां योग मीरा, श्री स्वामी गोविन्द सिद्धार्थ जी, श्री स्वामी सत्य बोधि सत्व जी, स्वामी अमृत बोधिसत्व जी, स्वामी अगेह भारती जी और सभी का औदार्य सहयोग मिलता आया है।

अन्तिम रूप से और यथार्थ की भूमि से 'युक्रांद' के इस बीज रूप पौधे के संरक्षण में संकलन-संपादन एवं प्रेस कार्यों के लिए हमें जिन प्रेमी कर्मठ मित्रों का सहयोग मिला है उनका किन शब्दों में प्रेम व्यक्त करें, समझ नहीं पाता। यथा : भाई कनु शेठ, भाई सुरेश डागा, भाई 'आकुल' राजेन्द्र, डा० सुश्री उर्मिला जी एवं सर्वश्री फूलचन्द विदेही, केवलचन्द जैन, ताराशंकर शुक्ला, ताराचन्द साहू, ईश्वरीप्रसाद गुप्ता की अनन्य सेवाओं ने 'युक्रांद' की ज्योति को अक्षुण्ण बनाए रखा है और आगे भी बनाए रखेंगे।

पुनः पुनः शुभेच्छाओं और भगवत् आशीष में खोया—

जबलपुर
८ जून, ७४

समर्पित :
अरविन्दकुमार

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युगान्तर

वर्ष – ५ अंक – २१ - २४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
" वार्षिक : १२-०० रु.

मई-जून संयुक्तांक मूल्य : दो रु० १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

- अरविन्दकुमार
- डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
- 'आकुल' राजेन्द्र (साधु आनन्द 'आकुल')
- आलोक पाण्डे

☐ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

युक्रान्द

संयुक्तांक

मई-जून ७४

प्रथम पंचवर्षीय समापन अंक

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ३ : अणु में विराट
(भगवान श्री की बोध-कथाओं से)

: ५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, आठवां प्रवचन)

: ३३ : भगवान श्री की अनुकम्पा
स्वामी अगेह भारती, जबलपुर

: ३८ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, नवमां प्रवचन)

गीत : काव्य

: ४ : गजल
स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

: ३७ : आह्वान
सुमन सरीन

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

बोध कथाएं

अणु में विराट

शाश्वत क्षण में छिपा है और अणु में विराट। अणु को जो अणु मान कर छोड़ दे, वह विराट को ही खो देता है। क्षुद्र में ही खोजने से परम की उपलब्धि होती है।

जीवन का प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण है। और किसी भी क्षण का मूल्य किसी दूसरे क्षण से न ज्यादा है, न कम है। आनन्द को पाने के लिए किसी अवसर की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। जो जानते हैं, वे प्रत्येक क्षण को ही आनन्द बना लेते हैं। और जो अवसरों की प्रतीक्षा करते रहते हैं, वे जीवन के अवसर को ही खो देते हैं, जीवन की कृतार्थता इकट्ठी और राशिभूत नहीं मिलती है। उसे तो बिन्दु-बिन्दु और क्षण-क्षण में ही पाना होता है।

एक साधु के निर्वाण पर उसके शिष्यों से पूछा गया था कि दिवंगत सद्गुरु अपने जीवन में सबसे बड़ी महत्वपूर्ण बात कौनसी मानते थे? उन्होंने उत्तर में कहा था—'वही जिसमें किसी भी क्षण वे संलग्न होते थे।'

बूंद-बूंद से सागर बनता है और क्षण-क्षण से जीवन। बूंद को जो पहचान ले, वह सागर को जान लेता है और क्षण को जो पा ले वह जीवन पा लेता है।

●

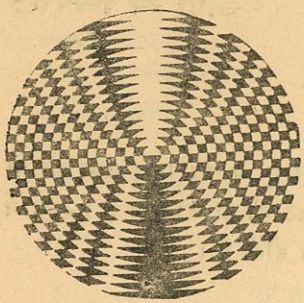

है मुझे शिकवा न कोई, है नहीं कोई गिला
जाम भगवद्-प्रेम का मुझको गया कोई पिला

जान पाया हूं ठहर कर, मैं स्वयं गन्तव्य हूं
अब फतह करना मुझे है किस तमन्ना का किला

साथ मस्ती का नया आलम लिये हूं चल रहा
अब सतायेगा मुरादों का, न कोई सिलसिला

जीत कर हारे यहां, सब हारते ही जीत है
चित्त के निष्काम-सर में आत्म-पंकज है खिला

अब न कोई प्रार्थना है, अब न कोई ध्यान है
मौन होते ही हृदय के मैं गया हूं खिलखिला

मूढ़तावश दौड़ता था, जग-परिधि के वृत्त पर
केन्द्र पर भगवत्प्रभा से मैं गया हूं झिलमिला

□ स्वामी योग प्रीतम
राजकीय महाविद्यालय,
भीलवाड़ा (राजस्थान)

कृष्ण और गीता

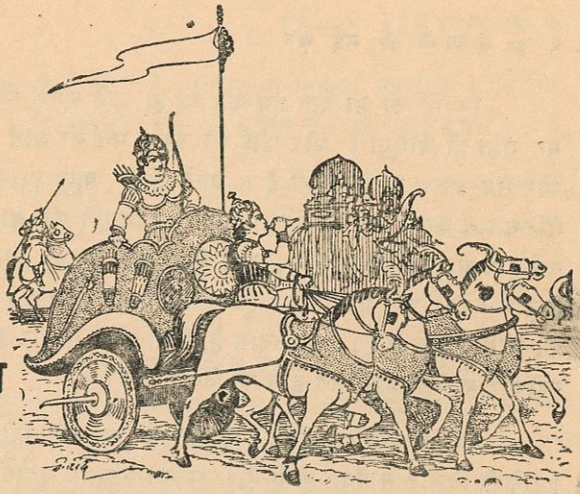

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १८ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक ८ वां, श्लोक ३९ से ४० के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

गीता के ये प्रवचन अनवरत पिछले माहों के 'युक्तांद' के अंकों में हमने संजोए हैं, उसी क्रम शृङ्खला में प्रस्तुत है यह ८ वां प्रवचन। —सं०]

कीर्तन का इतना ही अर्थ है अध्यात्म में कि उसके हम एक नाम के सहारे, एक शब्द के सहारे, एक गीत के सहारे, एक धुन के सहारे, एक नृत्य की गति के सहारे वह जो मनुष्य होने का होश है, वह खो दें; और वह जो परमात्मा होने का होश है, उसकी तरफ जायें।

एक मित्र ने पूछा है कि जीवन में छोटे-बड़े दुख के कारण कभी-कभी मन अशांत, निराश और बेचैन बन जाता है। तो संसार में ही रहकर मन सदा शान्त, प्रसन्न और उत्साही कैसे रखें ?

नियति की जो बात हम कह रहे हैं, उसे अगर ठीक से समझ लें तो मन शांत हो जाएगा। और कोई भी उपाय मन को शांत करने का नहीं है, और सब उपाय ऊपरी-ऊपरी हैं। उनसे थोड़ी बहुत राहत मिल सकती है, लेकिन मन शान्त नहीं हो सकता। लेकिन नियति की बात थोड़ी कठिन है, समझ में थोड़ी मुश्किल से पड़ती है। मन अशांत होता है, नियति का विचार कहेगा, उस अशांति को स्वीकार कर लें—उसके विपरीत शांत होने की कोशिश मत करें। मन उदास है, नियति का विचार कहेगा, उदासी को स्वीकार कर लें, प्रफुल्लित होने की चेष्टा न करें।

क्योंकि असली अशांति, अशांति के कारण नहीं, अशांति को दूर हटाने के विचार से पैदा होती है। असली उदासी, उदासी से नहीं, कैसे मैं प्रफुल्लित हो जाऊं—इस धारणा से इस विचार, इस आकांक्षा से पैदा होती है। उदासी को स्वीकार कर लें और आप पाएंगे शीघ्र ही कि उदासी विलीन हो गई है। उसकी स्वीकृति में ही उसका अन्त है। कैसे दुखी न हों, यह न पूछें। दुखी हैं, दुख को स्वीकार कर लें। वह भाग्य, वह नियति, वह है। उससे लड़ें मत, उससे सब लड़ाई छोड़ दें। उसके पार जाने की आकांक्षा भी छोड़ दें। उससे विपरीत की मांग भी छोड़ दें। उसे स्वीकार कर लें कि यह मेरी नियति, यह मेरा भाग्य। मैं दुखी हूं, बात यहां पूरी हो गई।

दुख से राजी हो जाएं और फिर देखें कि दुख कैसे टिक सकता है। अशांति को स्वीकार कर लें और आप शांत हो जाएंगे। हमारी अशांति, अशांति नहीं है। हमारी अशांति, शांति की चाह से पैदा होती है। इसलिए जो लोग शांति के लिए बहुत आकांक्षी हो जाते हैं, उनसे ज्यादा अशांत कोई भी नहीं होता।

मैं रोज न मालूम कितने लोगों को इस सम्बन्ध में, इस उलझन में पड़ा हुआ देखता हूं। जिस दिन से आपको ख्याल हो जाता है कि शांत कैसे होऊं, उस दिन से आपकी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि अशांति तो है ही, अब एक नयी अशांति भी शुरू हो गई कि शांत कैसे होऊं। और अशांत आदमी कैसे शांत हो सकता है! और अशांत आदमी पूजा भी करेगा, तो उसकी अशांति ही होगी उसकी पूजा में प्रगट। और अशांत आदमी ध्यान भी करेगा, तो उसका ध्यान भी उसकी अशांति से ही निकलेगा। अशांत आदमी मंदिर भी जाएगा, तो अपनी बेचैनी को साथ ले जायेगा। अशांत गीता भी

पढ़ेगा, तो करेगा क्या ? अशांति से अशांति ही निकल सकती है। इसलिए आप कुछ भी करें, करेगा कौन ? वह, जो अशांत है, वही कुछ करेगा।

ध्यान रहे, एक बहुत मनोवैज्ञानिक आधारभूत नियम है कि अगर आप अशांत हैं, तो आप जो भी करेंगे, उससे अशांति बढ़ेगी। कौन करेगा ? अशांत आदमी कुछ करेगा ! वह और अशांति को दुगनी कर लेगा, तीन गुनी कर लेगा।

ऐसा समझें कि एक आदमी पागल है और वह अब ठीक होने की कोशिश कर रहा है, खुद ही। वह क्या करेगा ? वह थोड़ा ज्यादा पागल हो सकता है और कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी कोशिश भी पागलपन से ही निकलेगी। छोड़ें पागल से शायद हमारा मन राजी न हो। और एक लोभी आदमी, वह लोभ छोड़ने की कोशिश कर रहा है। वह करेगा क्या ? यह लोभ छोड़ने की कोशिश भी लोभ से ही निकलेगी। वह आदमी लोभी है। तो अगर कोई उसको विश्वास दिला दे कि अगर वह इतना दान करता है, तो स्वर्ग में उसे भगवान के मकान के बिल्कुल पास मकान मिल जाएगा। अगर यह पक्का हो जाय, तो वह दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ से निकलेगा। स्वर्ग में जगह बिल्कुल निश्चित हो जाय, यह लोभ, तो दान कर सकता है। मगर यह दान लोभ के विपरीत नहीं है, लोभ का हिस्सा है।

इसलिए जिनको आप दान करते देखते हैं, यह मत समझना कि वे लोभ से मुक्त हो गए। सौ में निन्यानबे मौके पर तो यही हालत है कि यह उनका नया लोभ है। इस जमीन पर उनके लोभ का अन्त नहीं हो रहा है, परलोक तक जा रहा है ! वह यहां भी नहीं इन्तजाम कर लेना चाहते हैं, मरने के बाद भी उनका लोभ फैल गया है। वे वहां भी इन्तजाम कर लेना चाहते हैं। लोभी आदमी क्या करेगा ? जो भी करेगा वह लोभ के कारण ही कर सकता है। क्रोधी आदमी क्या करेगा ? वह जो भी करेगा क्रोध के कारण कर सकता है।

आप जो हैं, उसके रहते आप जो भी करेंगे, वह आपसे ही निकलेगा। और अगर नीम से पत्ता निकलेगा, तो वह कड़वा होगा। और आपसे जो पत्ता निकलेगा, वह आपका ही स्वाद वाला होगा। नियति का विचार यह कहता है कि आप कुछ करें मत। आप कर नहीं सकते कुछ, आप सिर्फ

राजी हो जाएं। इसका प्रयोग करके देखें। अशांति आई है बहुत बार और आपने शांत होने की कोशिश की और अब तक हो नहीं पाए।

इस दूसरे प्रयोग को करके देखें। अशांति आए स्वीकार कर लें कि मैं अशांत हूं। मैं आदमी ऐसा हूं कि मुझे अशांति मिलेगी। मैंने ऐसा कर्म किया होगा कि मुझे अशांति मिल रही है। नियति में मेरी अशांति का ही पात्र हूं मैं, इसे स्वीकार कर लें। इस अशांति से रत्ती मात्र संघर्ष न करें। क्या होगा ?

जैसे ही आप स्वीकार करते हैं, अशांति तिरोहित होनी शुरू हो जाती है; क्योंकि स्वीकार का भाव ही उसकी मृत्यु बन जाता है। जिस दुख के लिए हम राजी हो गए, वह दुख कहां रहा ? हम तो ऐसे लोग हैं कि सुख के लिए भी राजी नहीं हो पाते ! दुख के लिए राजी होना बहुत मुश्किल है। लेकिन जिस बात के लिए हम राजी हो गये...।

अभी कुछ ही दिन पहले एक महिला मेरे पास आई। उसके पति मर गए। स्वाभाविक है दुखी हो। अभी युवा है, कोई तीस-बत्तीस साल की उम्र है। अभी शादी हुए ही दो-चार साल हुए थे। योग्य है, पढ़ी-लिखी है, सुशिक्षित है, किसी युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। तो समझदारी के कारण वह रोई भी नहीं। अपने को समझाया, रोका, संयम किया। लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। जिन्होंने भी देखा—उसके धैर्य की, दृढ़ता की, सबने प्रशंसा की। तीन महीने पति को मरे हो गए। अब उसको हिस्टोरिक फिट आने शुरू हो गए। अब उसको चक्कर आकर बेहोशी आ जाती है। मैं सारी बात समझा। मैंने उससे कहा कि तू पति के मरने पर रोई नहीं, वही उपद्रव हो गया है। पति के होने का सुख तूने जाना, तो दुख कौन जानेगा और पति के प्रेम में तू आनन्दित थी, तो पति के विरह में दुखी कोई और होगा ! वह नियति का हिस्सा है।

जिसके साथ हमने सुख पाया, उसके अभाव में दुख पाएगा कौन ? तुझे ही पाना होगा। इसमें बंटवारा नहीं हो सकता कि सुख तो मैं पा लूं और दुख न पाऊं। वह तो चुन लिया तूने जिस दिन पति के साथ रहकर सुख पाया था, उसी दिन यह दुख भी निर्धारित हो गया। यह दुख कौन पाएगा ? तू रो, छाती पीट। उसने कहा—आप ऐसी सलाह देते हैं। मुझे

तो जितने बुद्धिमान आदमी मिले सब प्रशंसा करते हैं। मैंने कहा, वे ही तेरे हिस्टीरिया के जन्मदाता हैं, ये बुद्धिमान आदमी जो तुझे मिले! जब तू पति के पास सुखी हो रही थी तब उन बुद्धिमानों ने तुझे नहीं कहा था कि सुखी मत हो। अगर तूने सुख रोक लिया होता उस वक्त, तो अभी दुख भी न होता। लेकिन एक कदम उठा लिया तो दूसरा उठाना ही पड़ेगा। तू दुखी हो ले, नहीं तो तू पागल हो जाएगी।

वह मेरी बातें सुनते समय ही फूट पड़ी। उसके आंख से आंसू बहने लगे, उसने रोना शुरू कर दिया। वह आयी थी तब एक पहाड़ का बोझ उसके मन पर था, लौटते वक्त वह हल्की हो गयी थी। उसने मुझसे कहा—तो मैं हृदय भर के रो सकती हूं? रोना ही चाहिए। हृदय भर कर रो ले। और लड़ मत। दुख आया है, उसे स्वीकार कर ले और ठीक से दुखी हो ले, ताकि दुख निकल जाय। उसकी अभी मुझे खबर मिली है कि वह हल्की हो गई, फिट बन्द हो गए। उसने रो लिया, हृदय भर कर दुखी हो ली। उसने स्वीकार कर लिया—दुख मेरी नियति है।

जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं। अशांत हैं, अशांति को स्वीकार कर लें। लड़ें मत। फिर देखें क्या होता है। स्वीकृति क्रांतिकारी तत्व है। और जिस बात को हम स्वीकार कर लेते हैं, उससे छुटकारा उसी क्षण शुरू हो जाता है। हमारा उपद्रव क्या है? सुख को हम पकड़ते हैं, दुख को हम पकड़ते नहीं हैं। दुख से हम बचना चाहते हैं, सुख कहीं छूट न जाय, इस कोशिश में होते हैं; और हमें पता नहीं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब हम सुख को पकड़ते हैं, तब हमने दुख को पकड़ लिया, वह उसी का छिपा हुआ पहलू है। तो हम उल्टा काम कर रहे हैं, सुख को पकड़ना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं। यह नहीं होगा।

या तो दोनों को छोड़ दें, या दोनों के लिए राजी हो जाएं। दोनों हालत में आपके जीवन में क्रान्ति हो जायगी। लेकिन सुख-दुख तो हमारी समझ में आ जाते हैं। जब कोई आ जाता है, तो कहता है—शांति, अशांति, तो लगता है यह कोई दूसरी बात कर रहा है। बात वही है। वही के वही सिक्के हैं, नाम बदल गए हैं। आप शांति चाहते हैं। इसलिए आपको अशांत होना पड़ेगा, क्योंकि वह दूसरा हिस्सा कौन स्वीकार

करेगा। आप शांति पा लेंगे, तो अशांति कौन पाएगा ? आधा हिस्सा कहां जाएगा ? और सिक्के के दो पहलू अलग नहीं किए जा सकते। आप अशांति को भी राजी हो जाएं। अगर शांति चाहते हैं, तो दोनों से राजी हो जाएं। दोनों के राजी होने में ही क्रान्ति घट जाती है; क्योंकि साधारणतया मन दोनों के लिए राजी नहीं होता, एक के लिए राजी होता है। मन की तरकीब यह है कि आधे को पकड़ो, आधे को छोड़ो—यही मन का द्वन्द्व है, यही उसका कष्ट है। जब आप दोनों के लिए राजी हो गए, आप मन के पार हो गए। या दोनों को छोड़ दें, या दोनों को पकड़ लें—दोनों एक ही बात है।

इसलिए जगत में दो उपाय हैं, दो विधियां हैं। परम अनुभूति के पाने की दो विधियां हैं। एक, दोनों को छोड़ दें—यह संन्यासी का मार्ग है। दोनों को पकड़ लें—यह गृहस्थ का मार्ग है। दोनों का परिणाम एक है, क्योंकि मन की तरकीब है—एक को पकड़ना और एक को छोड़ना। दोनों को छोड़ें तो भी मन छूट जाता है, दोनों को पकड़ लें तो भी मन छूट जाता है, क्योंकि मन आधे के साथ जी सकता है। ये दो उपाय हैं। या तो दोनों छोड़ दें—सुख भी, दुख भी; शांति भी, अशांति भी। फिर आपको कोई अशांत न कर सकेगा। या दोनों पकड़ लें। दोनों पकड़ना सहज योग है।

इन मित्र ने यही पूछा है कि घर में, संसार में रहते हुए कैसे शांति पाऊं ? पहली बात शांति पाने की कोशिश मत करें। अशांति को स्वीकार कर लें। आप शांत हो जाएंगे। फिर दुनिया में कोई आपको अशांत नहीं कर सकता। अगर मैं अशांति के लिए राजी हूं, तो मुझे कौन अशांत कर सकेगा। अगर मैं गाली के लिए राजी हूं, तो कौन मेरा अपमान कर सकता है। मैं गाली के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई मेरा अपमान कर सकता है। मैं अशांति के लिए राजी नहीं हूं, इसलिए कोई भी अशांत कर सकता है। और जितना हम शांत होने की कोशिश करते हैं उतने हम संवेदनशील हो जाते हैं। आप देखें अक्सर घरों में यह हो जाता है। घर में अगर एकाध धार्मिक आदमी भूल-चूक से पैदा हो जाय, तो घर भर में उपद्रव हो जाता है। क्योंकि वह प्रार्थना कर रहा है, तो कोई अशांति खड़ी नहीं कर सकता। बच्चे खेल नहीं सकते, कोई शोर-गुल नहीं कर सकता। जरा कुछ

खटपट हुई कि वह आदमी उपद्रव मचाएगा। वह बैठा है शांत होने को, बैठा है पूजा, प्रार्थना, ध्यान करने को। लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि ध्यान करने वाला आदमी इतना परेशान क्यों होता है। गैर-ध्यान करने वाले इतने परेशान नहीं होते। यह ज्यादा आतुर होकर शांति को पकड़ने की कोशिश कर रहा है। जितनी आतुरता से शांति की मांग कर रहा है उतनी अशांति बढ़ रही है। छोटा-सा बच्चा फिर हिल नहीं सकता, बर्तन गिर जाय, आवाज हो जाय तो उपद्रव हो जाता है। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाय, पूरे घर को अशांत कर देगा। कठिनाई क्या हो रही है? वह समझ नहीं पा रहा है कि वह मांग क्या कर रहा है। वह जो मांग रहा है, वह असंभव है।

अगर हम ठीक से मन की प्रक्रिया को समझ लें, तो मन की प्रक्रिया को समझ कर जीवन बदला जाता है। प्रक्रिया यह है कि मन हमेशा चीजों को दो में तोड़ लेता है—मान-अपमान, सुख-दुख, शान्ति-अशान्ति, संसार-मोक्ष। दो में तोड़ लेता है और कहता है, एक नहीं चाहिए अरुचिकर है और एक चाहिए वह रुचिकर है। बस यह मन का खेल है। इस मन से बचने के दो उपाय हैं, या तो दोनों के लिए राजी हो जाएं मन मर जाएगा। या दोनों को छोड़ दें, तो भी मन मर जाएगा। जो आपके लिए अनुकूल पड़े वैसा कर लें; अन्यथा आपके शान्त होने का फिर कोई उपाय नहीं है।

जब तक आप शान्त होना चाहते हैं, तब तक शान्त न हो सकेंगे। जब तक आप सुखी होना चाहते हैं, दुख आपका भाग्य होगा। और जब तक आप मोक्ष के लिए पागल हैं, संसार आपकी परिक्रमा होगी। दोनों के लिए राजी हो जाएं। मांग ही छोड़ दें। कह दें जो होता है, मैं राजी हूं।

लाओत्से ने कहा है—हवाएं पूर्व की तरफ ले जाती हैं—सूखे पत्ते को, तो पत्ता पूर्व चला जाता है। और हवाएं बदल जाती हैं—पश्चिम की तरफ बहने लगती हैं, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। हवाएं शान्त हो जाती हैं, पत्ता जमीन पर गिर जाता है। हवाएं तूफान उठाती हैं, पत्ता आकाश में उड़ जाता है। लाओत्से ने कहा है कि मैं उस दिन शांत हो गया, जिस दिन मैं सूखे पत्ते की तरह हो गया। मैंने जगत को कहा—जहां तू ले जाय, हम राजी हैं, सूखे पत्त की तरह। दुख में ले जाओ, चलेंगे; नर्क में ले जाओ, चलेंगे। अगर आप नर्क में जाने को राजी हैं, तो आपके

लिए फिर नर्क हो ही नहीं सकता। फिर जहां भी आप हैं, वहां स्वर्ग है। और जो आदमी स्वर्ग के लिए दीवाना है, वह स्वर्ग में भी पहुंच जाय, तो नर्क में ही रहेगा।

मन की पकड़—वह जो आकांक्षा, जो वासना, यह चाहिए। हम जब कहते हैं, मुझे यह चाहिए तभी हम जगत के खिलाफ खड़े हो गए। और जब हम कहते हैं, जो मिल जाय।

ऐसा समझें, दुखी आदमी का लक्षण है—वह कहता है, ऐसा हो तो मैं सुखी होऊंगा—उसकी कंडीशन है। दुखी आदमी की शर्त है। वह कहता है, यह शर्त पूरी हो जाए, तो मैं सुखी हो जाऊंगा। सुखी आदमी बेशर्त है। वह कहता है कुछ भी हो, मैं खुशी रहूंगा। मैं चाहता नहीं हूं कि ऐसा हो, जो भी होगा, उसको मैं चाहूंगा। इस फर्क को समझ लें। एक तो हैं कि मैं चाहता हूं कि ऐसा हो, यह दुखी होने का उपाय है। एक यह है कि जो हो जाय, वही मेरी चाह है। जो हो जाय, वही मैं चाहूंगा। अगर परमात्मा दुख दे रहा है, तो वही मेरी चाह है—वही मैंने माँगा है—वही मुझे मिला है। मैं राजी हूं।

इसका थोड़ा प्रयोग करके देखें—चौबीस घंटे, ज्यादा नहीं। लड़ने का प्रयोग तो आप हजारों जन्मों से कर रहे हैं। एक चौबीस घंटे तय कर लें कि आज सुबह छः बजे से कल सुबह छः बजे तक, जो भी होगा, उसको मैं स्वीकार कर लूंगा। जहां भी हो विरोध द्वंद्व खड़ा नहीं करूंगा। देखें चौबीस घंटे में आपकी जिन्दगी में एक नई हवा का प्रवेश हो जाएगा। जैसे कोई झरोखा अचानक खुल गया और ताजी हवा आपकी जिन्दगी में आनी शुरू हो गई। फिर ये चौबीस घंटे कभी खत्म न होंगे। एक दफा इसका अनुभव हो जाय, फिर आप इसमें गहरे उतर जायेंगे।

कोई विधि नहीं है शान्त होने की—शान्त होना जीवन-दृष्टि है—कोई मैथड नहीं होता कि भगवान का नाम जप लिया और शांत हो गए। नहीं होंगे आप शान्त। आपकी यह चेष्टा—भगवान का स्मरण भी आपकी अशांति ही होगी। वह भी आप अशांत मन से ही जपते रहेंगे। वह भी आप की बेचैनी और बुखार का सुबूत होगा और कुछ भी नहीं। शान्त हो जाएं। कैसे ? अशान्ति को स्वीकार कर लें। दुख को स्वीकार कर लें। मृत्यु को

स्वीकार कर लें । फिर आपकी कोई मृत्यु नहीं है । जिसे हम स्वीकार कर लेते हैं, उसके हम पार हो जाते हैं ।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि मनुष्य यदि भविष्य को निर्माण करने की कोशिश करे तो विक्षिप्त हो जाता है, और अगर नियति को स्वीकार कर ले तो शांत हो जाता है । सवाल यह उठता है कि क्या इन दोनों के बीच कोई मध्य मार्ग, कोई समझौता, कोई कम्प्रोमाइज नहीं है । क्या ऐसा नही हो सकता कि आदमी अपने भविष्य निर्माण करने की यथाशक्ति चेष्टा करे, फिर परिणाम नियति के ऊपर छोड़ दे ।

ऐसा ही हो ऐसा दुराग्रह न रखे, तब भविष्य भी थोड़ा बहुत निर्माण होगा और व्यक्ति विक्षिप्त भी नहीं होगा । यही मन हमेशा बांटता है । जो मन कह रहा है कि भविष्य निर्माण करने की चेष्टा करो, वह मन राजी नहीं होगा, कोई भी परिणाम आए उसके लिए । और जो मन किसी भी परिणाम के लिए राजी हो सकता है, वह मन भविष्य निर्माण की चेष्टा के लिए व्याकुल नहीं होगा । जब आप सोचते हैं कि भविष्य का निर्माण कर सकता हूं तभी आप कर्ता हो गए, फिर परिणाम कोई भी आएगा तो कैसे राजी होंगे ? फिर परिणाम अगर अनुकूल न आएगा, तो आपको यह विचार उठेगा कि मैं ठीक से नहीं कर पाया, जैसा करना था वैसा नहीं कर पाया । जो होना था, वह नहीं हुआ । यह दुनिया मेरे विपरीत है, या शत्रु मेरे पीछे पड़े हैं, आप फिर स्वीकार नहीं कर पायेंगे परिणाम को सहजता से । चेष्टा जो आपने की है पाने की कुछ, उस चेष्टा में ही छिपा है वह तत्व, जो आपको परिणाम स्वीकार नहीं करने देगा । और अगर आप परिणाम स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं, तो चेष्टा भी आप क्यों करेंगे ? परमात्मा जो करवा रहा है, उसके लिए राजी हो जाएंगे ।

नहीं ! कोई समझौता नहीं है । जगत में सत्य के साथ कोई समझौता नहीं होता । सब समझौते झूठे होते हैं । हमारी मन की तरकीब होती है, हमारा मन यह कहता है कि दोनों हाथ लड्डू । यह समझौते का मतलब यह है, इसका मतलब यह है कि भाग्य के ऊपर छोड़ दें तो शांत हो सकते हैं । शांत भी हमें होना है । अगर भाग्य के ऊपर छोड़ दें, तो भविष्य निर्माण करना हमारे हाथ में नहीं रह जाता । निर्माण भी हमें करना है । वह मजा भी लेना है निर्माण करने का । और शांत होने का मजा भी लेना है । तो

हम कहते हैं तरकीब निकाली जा सकती है। कर्म अपने हाथ में रखें और परिणाम जब हुआ तब कह देंगे कि ठीक, प्रभु की जो मरजी। आधे में आप होंगे, आधे में प्रभु! या तो पूरे में प्रभु होगा, या पूरे में आप। यह आधा-आधा नहीं चल सकता। यह दो नावों पर सवार होकर चलने का कोई उपाय नहीं; क्योंकि दोनों नाव बिल्कुल विपरीत दिशा में जा रही हैं। इनमें बुरी तरह फसेंगे और त्रिशंकु हो जाएंगे। एक टांग एक नाव पर, दूसरी टांग दूसरी नाव पर और दोनों विपरीत जा रही हैं। क्योंकि एक नियति का विचार कहता है—सब उसका है, इसलिए मेरे हाथ में कोई उपाय नहीं है, जो वह करवाएगा मैं करूंगा, जो वह देगा मैं ले लूंगा, जो वह नहीं देगा, नहीं देगा, वही है सब। करने वाला भी वही, पाने वाला भी वही, देने वाला भी वही। तब आप शांत हो जाएंगे। आप सोचते हैं कि नहीं, थोड़ी देर तक अपनी कोशिश भी कर लें—कुछ अपने करने से मिल जाय, वह भी ले लें; और न मिले तो अशांति भी ग्रहण कर लें, क्योंकि उसकी मरजी। ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। वह कुछ करने की जो वृत्ति है, वही अशांति ले आएगी। समझौता नहीं हो सकता।

वे मित्र कहते हैं कि यथाशक्ति चेष्टा करने से कुछ तो निर्माण होगा और विक्षिप्तता से भी बच जाएंगे। नहीं, जिस मात्रा में निर्माण होगा उसी मात्रा में विक्षिप्त भी हो जाएंगे। वही मात्रा होगी। कुछ निर्माण होगा, कुछ विक्षिप्त भी होंगे। हम कर क्या लेंगे? क्या, कर क्या पाते हैं? हमसे पहले जमीन पर कितने लोग रहे हैं, अरबों-खरबों लोग रहे हैं। जिस जगह आप बैठे हैं, वैज्ञानिक कहते हैं, उस जगह—हर आदमी जहां खड़ा हो सकता है, उतनी जगह में—कम से कम दस आदमियों की कब्र बन चुकी है। जहां आप बैठे हैं वहां दस आदमी गड़े हुए हैं। जमीन पर एक इन्च जमीन नहीं है, जहां कब्र नहीं बन चुकी है। सब मिट्टी शरीरों में घूम चुकी है। सब मिट्टी देह बन चुकी है। उन शरीरों ने भी न मालूम क्या-क्या करने के इरादे किए थे। उन सबके करने के इरादे का क्या परिणाम है? और क्या अर्थ है आज? उनका किया हुआ वैसा ही मिट जाता है, जैसे बच्चे रेत पर घर बनाते हैं और बना भी नहीं पाते और मिट जाते हैं। थोड़ी देर लगती है हमारे घरों के मिटने में—थोड़ा समय लगता है, इससे भ्रम पैदा होता है। लेकिन सब मिट जाता है। क्या कर लेंगे आप? क्या बना लेंगे? बन भी जायगा, तो क्या होगा? वह जो नियति का विचार है, वह यह कहता है

कि आदमी कर भी ले तो क्या होगा ? करने में अपनी शक्ति, अपना समय, अपना अवसर खो देगा ।

इसका यह मतलब नहीं कि आदमी कुछ भी न करे । आदमी कुछ किए बिना नहीं रह सकता, कुछ करेगा। लेकिन स्वयं को कर्ता मान कर न करे, छोड़ दे उस पर । वह जो करवाये, कर ले । फिर वह जो दे दे, ले ले । जब हम छोड़ेंगे कर्म उस पर तभी फल भी उस पर छूटेगा । कर्म रखेंगे अपने हाथ में, फल छोड़ेंगे उसके ऊपर—यह बेईमानी शुरू हो गई—हमने ईश्वर को भी धोखा देना शुरू कर दिया । इसका यह मतलब नहीं कि आपसे कर्म छीन लिया जाता है; सिर्फ कर्ता छीना जा रहा है—कर्म नहीं छीना जाता । और मजा तो यह है कि जिसका कर्ता शांत हो जाता है, वह इतना कर्म कर पाता है जितना आप कभी भी न कर पाएंगे । क्योंकि आपको कर्ता को भी ढोना पड़ता है, उसके पास सिर्फ कर्म रह जाता है । वह शुद्ध उसकी ऊर्जा कर्म बन जाती है । आपको तो अहंकार और कर्ता और 'मैं' इसको काफी ढोना पड़ता है, इसमें ज्यादा शक्ति तो इसी में व्यय होती है । कर्म तो आपसे होगा, लेकिन आप उसके करने वाले नहीं होंगे ।

नदियां बह रही हैं । अगर किसी नदी को यह ख्याल आ जाय कि मुझे तो फलां जगह जाकर सागर में गिरना है, वह नदी पागल हो जाएगी । वह बह रही है, कहीं कोई फिक्र नहीं है कि कहां गिरे—पूर्व में गिरे कि पश्चिम में, कि अरब की खाड़ी में गिरे कि बंगाल की खाड़ी में; कहां गिरे—हिन्द महासागर में, कि पैसफिक में । नदी को कोई चिन्ता नहीं है । नदी बही जा रही है अपने स्वभाव से । पहाड़ आएंगे, काटेगी; रास्तों में अड़चनें होंगी, किनारा काट कर गुजरेगी; और एक दिन सागर में गिर जाएगी । नदी बेचैन नहीं है । लम्बी यात्रा है, लेकिन कोई बेचैनी नहीं है ।

जो व्यक्ति सब कुछ परमात्मा पर छोड़ देता है, वह भी ऐसे ही यात्रा करता है । कर्म तो बहुत होता है उससे, लेकिन कर्ता नहीं होता । फिर सागर जहां उसे गिरा देता है, वहीं गिरने को राजी हो जाता है । उसका कोई आग्रह नहीं होता । आग्रह हो तो ही चेष्टा हो सकती है । आग्रह न हो तो चेष्टा नहीं होती कर्म होता है—कर्तारहित होता है, प्रयास, धक्का, जबर्दस्ती नहीं होती ।

पर हमारा मन ऐसा है कि हमारे पास दो ही तरह के उपाय हैं—आम तौर से। एक रास्ता अपने रास्ते पर गिरता हो, एक आदमी जानवरों को हकेल कर ले जाता है, तो पीछे से डंडा मारता है। एक रास्ता यह है कि कोई पीछे से हमें धक्का दिए जाय, तो हम चलते हैं। एक रास्ता यह है कि अगर होशियार हो कोई, तो आगे घास का गट्ठर ले के चलने लगे, तो भी जानवर उसके पीछे चलता है; क्योंकि आगे आशा दिखाई पड़ती है कि वह घास मिलने वाला है।

तो, या तो भविष्य में परिणाम की आशा हो, या परिस्थिति में जबर्दस्ती का धक्का हो। इन दो से हम चलते हैं। कर्ता के चलने का यह ही उपाय है। तो आपको अगर आशा न हो परिणाम की, तो कर्म करने का मन नहीं होता। अगर घास का गट्ठर न दिखता हो तो फिर क्यों चलें—फिर चलने की कोई जरूरत नहीं। और या फिर पीछे पत्नी, बच्चे, परिस्थिति धक्का न दे रही हो कि करो, तो भी मन चलने को नहीं होता कि क्या सार, किसके लिए चलें! लोगों को बच्चे पैदा हो जाते हैं तो बहुत दौड़-धूप करते हैं, क्योंकि बच्चों के लिए जी रहे हैं। उनको पता नहीं कि बच्चे धक्के दे रहे हैं पीछे से कि चलो, अब रुक नहीं सकते। अब उनको लगता है कि जीने में कोई कारण आ गया। अब यह करना है, अब कर्तव्य है। ये दो उपाय हमें साधारणतः दिखाई पड़ते हैं।

अहंकार पशु है। वह पशु की भाषा समझता है। एक ओर अहंकार से ऊपर जीने का उपाय है, वह आत्मिक जीवन है। वहां न आगे परिणाम का कोई सवाल है, न पीछे किसी धक्के का कोई सवाल है। आप जीवित हैं। जीवित होना, जैसे फूल खिला है, उससे सुगन्ध गिर रही है, इसलिए नहीं कि कोई रास्ते से गुजरेगा उसके लिए, कि कोई बहुत बड़े सुगन्ध के पारखी आ रहे हैं, उनके लिए। रास्तों से कोई न भी गुजरे तो फूल की सुगन्ध गिरती रहेगी, क्योंकि फूल का अर्थ ही सुगन्ध का होना है। जीवन का अर्थ कर्म है—न पीछे कोई आकांक्षा है, न आगे कोई सवाल है।

आप जीवित हैं, जीवित होने का अर्थ कर्म है। इस कर्म का होना आगे पीछे से नहीं आ रहा, भीतर से आ रहा है। भीतर से जब आता है तो परमात्मा से आता है। पीछे से जब आता है तब संसार के धक्के से आता है। आगे से जब आता है तब मन की वासना, इच्छा से आता है।

जब भीतर से आता है—सहज, अभी और यहीं; जैसे नदी बह रही है, फूल खिल रहा है और सुगन्ध बरस रही है—ठीक ऐसे जब आपके भीतर से आने लगता है।

नियति का अर्थ है—जीवन को इस क्षण में भीतर से जीने का उपाय। अपने को छोड़ कर परमात्मा की जो अनंतता अभी मौजूद है, उस अनन्तता में अभी खिल जाने की व्यवस्था—अभी, यहीं, आगे पीछे का कोई सवाल नहीं। बहुत कर्म घटित होता है ऐसे आदमी से, लेकिन कर्म का बोझ नहीं होता ऐसे आदमी पर। ऐसा आदमी बहुत करता है, लेकिन कभी भी 'मैं कर रहा हूं'—ऐसी अस्मिता इकट्ठी नहीं होती। ऐसा आदमी जानता है—प्रभु ने जो करवाया, वो करवाया; जो नहीं करवाया, नहीं करवाया। जो उसकी मर्जी, यह उसका आखिरी भाव बना रहता है। समझौता नहीं है, सत्य के जगत में कभी कोई समझौता नहीं है। मन के जगत में सब समझौता है। मन हमेशा कोशिश करता है, सबको संभाल लो; और सबको साधने में एक भी नहीं सध पाता है। पर एक के साधने से सब सध जाता है।

एक प्रश्न और, और फिर मैं सूत्र लूं।

इस प्रश्न को मैं रोके हुआ हूं इतने दिन से, वह रोज पूछा जाता है। मैंने सोचा था, जिस दिन नहीं पूछेंगे उस दिन जवाब दे दूंगा। आज नहीं पूछा है। एक सज्जन रोज ही पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? इसका साफ-साफ उत्तर दें।

मेरे लिए भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अगर कोई कहे कि मैं भगवान नहीं हूं, तो वह असत्य बोल रहा है—मेरे लिए। मैं भगवान हूं, उतना ही जितने आप भगवान हैं। भगवान के होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। आपको पता हो या न पता हो। तो वे मित्र रोज लिख कर पूछे चले जाते हैं कि क्या आप भगवान हैं? अगर आप नहीं हैं तो आप जाहिर करें और अपने शिष्यों को समझा दें कि वे आपको भगवान न कहें?

उन्होंने नाम नहीं लिखा है, नहीं तो मैं अपने शिष्यों को कहूं कि उनको भी भगवान कहें। मेरी कोशिश यह है कि आपकी समझ में आ जाय

कि आप भगवान हैं, उनकी कोशिश यह है कि मेरी समझ में डाल दें कि मैं भगवान नहीं हूं।

सारी चेष्टा धर्म की यह है कि आपको ख्याल में आ जाए कि आप भगवान हैं। और जब तक यह ख्याल में न आ जाय, तब तक जीवन में परेशानी होगी, दुख होगा, पीड़ा होगी। इससे कम में काम नहीं चलेगा। इससे कम में कोई तृप्ति भी नहीं है। इसके पेहले कोई मंजिल भी नहीं है। इसके पहले उपद्रव ही है। यही है मुकाम। लेकिन हमें तकलीफ होती है। हमें तकलीफ होती है। ये तकलीफ क्या होती है ? क्योंकि भगवान की हमने कुछ धारणा बना रखी है।

वे मित्र बार-बार लिखते हैं कि भगवान ने तो सृष्टि बनाई है, आपने सृष्टि बनाई ?

स्वभावतः भगवान की हमारी धारणा है, जिसने सृष्टि बनाई। लेकिन हमारी यह कल्पना में भी नहीं है कि सृष्टि भी भगवान अपने भीतर, अपने में से ही बनाएगा; और उसके बाहर से कुछ लाने को है नहीं। भगवान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, कोई मैटीरियल भी नहीं है, जिससे वह सृष्टि बना ले। अगर वह सृष्टि भी बनाएगा तो वैसे ही, जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाला बुनती है। वह मकड़ी का उतना ही हिस्सा है। सृष्टि भगवान से कुछ अलग नहीं है। क्योंकि उससे अलग कुछ है नहीं, जिसको वह बना दे, जिसके आधार पर वह सृष्टि को खड़ी कर दे। सृष्टि उसके ही भीतर से फैलाव है। तो सृष्टि, सृष्टा का ही हिस्सा है, और एक पत्थर भी, जो रास्ते के किनारे पड़ा है, वह उतना ही भगवान है, जितना बनाने वाला भगवान है। जो बनाया गया है, वह भी भगवान है। जो बनाने वाला है, वह भी भगवान है। और यह बनाने वाला, और बनाया गया का जो शब्द है हमारा— यह हमारी भाषा की भूल है। इसलिए मैं निरन्तर कहता रहता हूं कि भगवान को कभी कुम्हार की तरह मत सोचना कि वह घड़े को बना रहा है; क्योंकि कुम्हार मर जाय तो भी घड़ा रहेगा। घड़ा तो कुम्हार से अलग हो गया, कुम्हार के मरने से घड़ा नहीं मर जायेगा। लेकिन अगर भगवान न हो, तो यह जगत किसी भी क्षण विलीन हो जायेगा। इसलिए घड़ा और कुम्हार की बात ठीक नहीं है। यहां बनाने वाला जो

बनाता है, उसमें समाया हुआ है, अलग नहीं है। इसलिए मैं निरन्तर कहता हूं कि भगवान है नर्तक की तरह—नटराज !

एक नाच रहा है आदमी। तो नृत्य है और नृत्यकार है, लेकिन अलग-अलग नहीं। अगर नृत्यकार चला जाय, तो नर्तन बचेगा ? नहीं, पीछे वह भी उसी के साथ चला जायेगा। आप नृत्य को अलग नहीं कर सकते नृत्यकार से।

इसलिए हमने परमात्मा की नटराज की मूर्ति बनायी है। वह बहुत अर्थ की है। कुम्हार और घड़े वाली बात तो बचकानी है। जिनके पास बुद्धि कम है, उनके काम की है। नटराज का अर्थ यह है कि यह जो नृत्य है विराट, यह उससे अलग नहीं है। यह सारा का सारा नृत्य, नृत्यकार ही है, नर्तक ही है। तो मैं आपसे कहता हूं कि इस सृष्टि को बनाने में मेरा उतना ही हाथ है—जितना आपका, जितना एक पक्षी का, जितना एक पौधे का, जितना राम का, कृष्ण का, बुद्ध का। हम इस विराट के उतने ही हिस्से हैं, जितना कोई और।

आप सृष्टा भी हैं, सृष्टि भी। आप नर्तक भी हैं, नृत्य भी और जब तक आप समझते हैं कि आप सिर्फ नृत्य हैं, नर्तक नहीं तब तक आप भूल में हैं; क्योंकि नृत्य हो ही नहीं सकता नर्तक के बिना। सृष्टि हो ही नहीं सकती सृष्टा के बिना। अगर सृष्टा उसके भीतर मौजूद है, वह आपके भीतर भी मौजूद है। आपको उसकी खबर नहीं है, इसलिए परेशान हैं।

वे मित्र पूछते हैं कि राम को हम भगवान कहते हैं, कृष्ण को हम भगवान कहते हैं, बुद्ध को, महावीर को कहते हैं; लेकिन उन्होंने खुद अपने को भगवान नहीं कहा और यहां ऐसा मालूम पड़ता है कि आप लोगों से अपने को भगवान कहला रहे हैं। तो उन्हें कुछ पता नहीं है।

कृष्ण तो बहुत स्पष्ट अर्जुन से कहते हैं—'सर्व धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज', सब छोड़, और मेरी शरण में आ। कृष्ण तो कहते हैं, मैं ही परापर ब्रह्म हूं।

बुद्ध ने तो कहा है, मैंने वह पा लिया है जो अन्तिम है। अब मैं मनुष्य नहीं हूं, अब मैं बुद्ध हो गया हूं।

महावीर ने तो कहा है, आत्मा जो शुद्ध हो जाती है, तो उसी का नाम परमात्मा है और मैं परिपूर्ण शुद्ध हो गया हूं।

इन मित्र का ख्याल ऐसा है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण के अनुयायियों ने उनको भगवान कह दिया, उन्होंने नहीं कहा। अगर वो थे, तो कहने में डर क्या है ? और अगर वो नहीं थे, या कहने में कुछ संकोच करते थे, तो अनुयायियों के कहने से भी नहीं हो जायेंगे। सीधी घोषणा है उनकी और उन्होंने यही नहीं कहा कि वे भगवान हैं, उन्होंने समझाने की कोशिश की कि आप भी भगवान हैं। और जिसको इतना भी बल न हो कहने का कि मैं भगवान हूं, वह आपसे क्या कहेगा कि आप भगवान हैं !

उस मित्र ने एक बात और पूछी है—कि कृष्ण भगवान थे, तो उन्होंने अर्जुन को तो विराट का दर्शन कराया, आप करवा सकते हैं ?

मैं वायदा करता हूं कि मैं करवा सकता हूं, लेकिन अर्जुन होने की तैयारी चाहिए। हम कभी सोचते नहीं कि क्या पूछ रहे हैं। मेरी तरफ से वायदा पक्का है। जिसको भी विराट के दर्शन करने हों, मैं करवाऊंगा, लेकिन आने के पहले छाती पर हाथ रख कर इतना भर सोच लेना कि अर्जुन जैसी तैयारी है। फिर कोई बाधा नहीं है, फिर मेरे बिना भी दर्शन हो सकता है। कोई मेरी जरूरत नहीं है, आपकी अर्जुन जैसी तैयारी हो, तो परमात्मा आपको कहीं भी उपलब्ध हो जायेगा। वह अर्जुन की तैयारी जब होती है, तो वह सब जगह उपलब्ध है। और जब अर्जुन की तैयारी नहीं होती, तो वह आपके सामने भी खड़ा हो, तो आप पूछते रहेंगे कि आप भगवान हैं।

जीवन को सदा इस दृष्टि से सोचें और सदा इस दृष्टि से पूछें कि उस पूछने से आपके लिए क्या हो सकेगा। मैं भगवान हूं या नहीं हूं, इससे आपको क्या हो सकेगा ? इससे क्या परिणाम होगा ? आपकी जिन्दगी कैसे इससे बदलेगी ? सदा अगर कोई इतना ख्याल रख सके, कि उसकी जिज्ञासा सार्थक, अर्थपूर्ण हो जाती है—उपयोगी हो जाती है। अकारण कुछ मत पूछते रहें। इतना तो ख्याल निश्चित ही रखें कि इसके उत्तर से आपको क्या होगा। आप इस उत्तर का क्या उपयोग करेंगे। आपकी जिन्दगी को ये कहां तक बदलेगा। आपकी जिन्दगी में किस तरह औषधि बन सकेगा। वही प्रश्न पूछें जो आपके लिए औषधि बन जाए, अन्यथा प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं।

इसलिये इस प्रश्न को मैं टाल रहा था इतने दिन तक और सोच रखा था कि जिस दिन नहीं पूछेंगे मित्र उस दिन जवाब दे दूंगा। क्यों ऐसा सोच रखा था कि नहीं पूछेंगे उस दिन जवाब दे दूंगा, इसलिए कि शायद इतने दिन सुनके बुद्धि थोड़ी आ जाय और न पूछें। और इतनी भी बुद्धि न आए, तो उत्तर भी समझ में न आएगा, इसलिए रुक गया था। आज उन्होंने नहीं पूछा, मान लेता हूं। डर तो यह है कि शायद वे न भी आए हों। लेकिन मान लेता हूं कि उन्हें थोड़ी समझ आई होगी कि इन बातों के पूछने का कोई अर्थ नहीं है। कौन भगवान है, कौन नहीं है—इससे क्या लेना-देना।

एक बात का पता लगाइये कि आप भगवान हैं या नहीं। बस उसकी फिकर में लग जाइये और जिस दिन आपको पता चल जाए कि आप भगवान हैं, उस दिन डरिये मत, छिपाइये मत, खबर करिये। हो सकता है आपकी खबर से किसी के कान में भनक पड़ जाय और उसे भी ख्याल आने लगे कि यह आदमी भगवान हो सकता है, तो मुझ में ऐसी क्या अड़चन है—मैं भी थोड़ी चेष्टा करूं। शायद आपके गीत को सुन कर किसी और को भी गीत गाने का ख्याल आ जाए—शायद कोई और भी गुनगुनाने लगे। शायद आपको नाचता देखकर किसी के पैरों में थिरकन आ जाय, शायद कोई और भी नाचने लगे।

अब हम सूत्र को लें :

"इसके उपरान्त संजय बोला कि हे राजन! केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़े हुए कांपता हुआ, नमस्कार करके, फिर भी भयभीत हुआ, प्रणाम करके भगवान कृष्ण के प्रति गद्गद् वाणी से बोला।"

कंप रहा है अर्जुन। जो देखा है, उससे उसका रोआं-रोआं कंप गया है। भविष्य की झलक बड़ी खतरनाक हो सकती है। शायद इसीलिए प्रकृति हमें भविष्य के प्रति अन्धा बनाती है, नहीं तो जीना बहुत मुश्किल हो जाय। आप देखते हैं—तांगे में जुता हुआ घोड़ा चलता है, उसकी आंखों पर दोनों तरफ से पट्टी लगी होती है। अगर वह पट्टी न लगी हो तो घोड़ा सीधा नहीं चल पाता। वह पट्टी खुली हो तो दोनों तरफ उसे दिखाई पड़ता है, उसकी वजह से अड़चन खड़ी होती है, फिर वह सीधा नहीं चल

पाता। तो दोनों तरफ से उसकी आंखें हम अन्धी कर देते हैं। तो सिर्फ वह आगे देख पाता है—दो कदम। बस एक सीधी रेखा में चलता रहता है।

ठीक हम भी अन्धे आदमी हैं। हमें भविष्य दिखायी नहीं पड़ता। भविष्य दिखाई पडे तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ जायं। आप किसी स्त्री को प्रेम कर रहे हैं और उससे कह रहे हैं कि तेरे बिना मैं जी न सकूंगा; और आपको दिखाई भी पड़ रहा है कि दो दिन बाद यह मर जाएगी और न केवल मैं जीऊंगा, दूसरी शादी भी करूंगा, अगर यह भी आपको दिखाई पड़ रहा हो, तो किस मुंह से कह सकियेगा कि तेरे बिना जी न सकूंगा। मुश्किल पड़ जाय, जब दिख रहा हो कि दो दिन बाद यह स्त्री मरेगी और मैं जीऊंगा; और न केवल जीऊंगा, कोई और स्त्री से शादी करूंगा। और उस स्त्री से भी मैं यही कहूंगा कि तेरे बिना कभी न जी सकूंगा।

आपको भबिष्य दिखता नहीं है। बच्चा पैदा हो और उसको उसका पूरा भविष्य दिख जाय, कैसी मुश्किल हो जाय? जीना बिल्कुल असम्भव हो जाय, एक-एक कदम चलना मुश्किल हो जाय। आपको पता नहीं है, इसलिए अन्धे की तरह शान से चले जाते हैं। क्या कर रहे हैं, कोई फिक्र नहीं है। क्या हो रहा है, कोई फिक्र नहीं है; क्या परिणाम होगा, कोई फिक्र नहीं है। अतीत भूलता चला जाता है, भविष्य दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए आप जी पाते हैं। अतीत भूले न, भविष्य दिखाई पड़ने लगे, आप यहीं ठप्प हो जाएं, इंच भर हिलने का उपाय न रह जाय। आपको दिखाई पड़ जाय कि आप मरने वाले हैं, चाहे सत्तर साल बाद सही। साफ दिखाई पड़ जाय कि फलां तिथि को मरने वाले हैं, सत्तर साल बाद। लेकिन ये बीच के सत्तर साल बेकार हो गए। अब आप जी न सकेंगे। अब आप किस इरादे से मकान बनाएंगे—किसी और के रहने के लिए? किस इरादे से बैंक में धन इकट्ठा करेंगे—किसी और के भोग के लिए? किस इरादे से लड़ेंगे किसी से? अब कोई इरादा नहीं रह जायगा। मौत सारे इरादों को काट देगी और जीना तो पड़ेगा। अगर आपको यह भी पता हो कि सत्तर साल जीना ही पड़ेगा, मौत उसी तरह होगी, जैसे होने वाली है—बीच में आत्महत्या भी करने का कोई उपाय नहीं है—भविष्य नहीं है, भविष्य तो मरने का है खाट पर; फिर हाथ-पैर कंपते रहेंगे, पूरे जीवन आप कंपते रहेंगे। जो बहुत विचारशील लोग हैं, उनके कम्पन का कारण यही है।

स्वेन्कीगाग—डेनिस विचारक—ने लिखा है, कि जिस दिन से मुझे होश आया मैं कंप रहा हूं, तब से मेरा कम्पन नहीं रुकता। रात सो नहीं सकता हूं, क्योंकि मुझे पता है कि कल मौत है और मैं हैरान हूं कि सारी दुनिया क्यों मजे से चली जा रही है; शायद इन्हें पता नहीं है कि कल मौत है।

भविष्य नहीं दिखाई पड़ता इसलिए हम बड़े निश्चिन्त हैं. दिखाई पड़े तो बड़ी अड़चन हो जाय। अर्जुन को दिखाई पड़ा है। तभी उसने देखा, एक झलक उसे मिली है। वह कंप रहा है, वह भयभीत हो रहा है।

संजय कहता है—कांपता हुआ, हाथ जोड़े हुए, नमस्कार करता है, भयभीत हुआ प्रणाम करता है। गद्‌गद् भी हो रहा है। उसकी स्थिति बड़ी दुविधा की है। जो दिखाई पड़ा है, वह उसकी विजय है। जो दिखाई पड़ा है, उसमें वह जीतेगा। इसलिए आनंदित भी हो रहा है। जो दिखाई पड़ा है, वह विराट की झलक है। यह सौभाग्य है, यह कृपा है, यह प्रसाद है। वह गद्‌गद भी हो रहा है। और जो दिखाई पड़ा है, वह मृत्यु भी है। वह भयभीत भी हो रहा है। और एक अर्थ से और भी भयभीत हो रहा है, क्योंकि जो विजय सुनिश्चित हो, उसमें भी मजा चला जाता है। अगर आप एक खेल खेल रहे हैं किसी के साथ. जिसमें आपकी जीत निश्चित है, खेल का मजा चला जाता है। खेल का तो मजा इसी में है कि जीत अनिश्चित है। आप जीत भी सकते हैं और हार भी सकते हैं। जिस खेल में आपको जीतना ही है, जिसमें कोई उपाय ही नहीं है हार का—वह खेल खत्म हो गया, वह तो एक बन्धन हो गया। इसे थोड़ा समझ लें। थोड़ा बारीक है। अगर आपको पक्का ही है और कोई उपाय जगत में नहीं है कि आप हार सकें, आप जीतेंगे ही; तो मजा ही जीत का चला गया। और जीत से भी भय पैदा होगा। यह जीत भी एक जबर्दस्ती मालूम पड़ेगी। इसमें अहंकार को रस तो रह नहीं गया।

अर्जुन ने देखा है कि वह जीतेगा। उसके योद्धा विपरीत जो खड़े हैं, वे मृत्यु में विलीन हो रहे हैं। उसकी जीत सुनिश्चित है, नियति है, भाग्य है। अगर जीत नियति है, तो फिर अहंकार को उससे कुछ भी रस नहीं मिलेगा। फिर मैं नहीं जीतता हूं, जीतना था इसलिए जीतता हूं। फिर दुर्योधन नहीं हारता है, हारना था बेचारे को, इसलिए हारता है। तब न तो

कोई रस है अपने अहंकार में और न दुर्योधन की हार में कोई रस है। तब तो हम पात्र हो गए, खिलौने हो गए। तब तो हम गुड्डे-गुड़ियों की तरह नाच रहे हैं। कोई भीतर से तार खींच रहा है। किसी को जिताना है, वह जीत जाता है। किसी को हराना है, वह हार जाता है। किसका गौरव! किसका अपयश! अगर यह सच है कि मेरी जीत निश्चित है, तो अर्जुन कंप गया होगा इससे भी; क्योंकि तब तो मजा ही चला गया—तब किस मुंह से वह कहेगा कि दुर्योधन को मैंने हराया, कि कौरव हारे पांडव से। तब इसका कोई अर्थ नहीं रह गया। कौरव हारे, क्योंकि नियति उनकी हारने की थी। पांडव जीते, क्योंकि नियति उन्हें जिता रही थी। और नियति दोनों के हाथ के बाहर है। यह भी बहुत भय देने वाली बात है। तो मजा ही चला गया।

एक तो मृत्यु को देखा, उससे कंपित हो रहा है। दूसरा सुनिश्चित विजय को देखा, उससे भी, उससे भी वह भयभीत हो रहा है। अर्जुन योद्धा था। फेयर नहीं है अब लड़ाई, अब जो युद्ध है, वह न्यायपूर्वक नहीं है। अब तो हारने वाले हारेंगे, जीतने वाला जीतेगा। और कृष्ण कहते हैं, मैं पहले ही काट चुका हूं इनको, तू सिर्फ निमित्त है, यह भी कंपित कर देगा। क्षत्रिय का सारा मजा ही चला गया। अब यह युद्ध हो रहा है, जैसे हो या न हो बराबर है। एक झूठा युद्ध रह गया, एक सूडो, मिथ्या, भ्रामक! जिसमें सब बातें पहले से ही तय हों, उसमें क्या सार है? एक अर्थ में गद्‌गद् है कि कृष्ण ने अनुभव का मौका दिया, एक द्वार खोला अनन्त का, और एक लिहाज से भयभीत है। दोनों बातें एक साथ हैं।

संजय कहता है, 'ऐसा भयभीत, साथ ही गद्‌गद् हुआ प्रणाम करके अर्जुन कहने लगा, हे अन्तर्यामी! यह योग्य ही है कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है, तथा भयभीत हुए राक्षस लोग दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्ध-गणों के समुदाय नमस्कार करते हैं—यह योग्य ही है।"

यह दोनों बातें ही योग्य हैं कि कोई आपके नाम से हर्षित होता है और कोई आपके नाम से भयभीत होता है। ये दोनों बातें ठीक ही है, क्योंकि जो मिटने जा रहा है आपको देखकर, आप जिसके लिये विनाश बन जाते हैं—उसका भयभीत होना; और वह जो आपको देखकर आनन्द को, परम

अवस्था को उपलब्ध होने जा रहा है, जिसके भीतर नए का सृजन हो रहा है—उसका हर्षित होना; दोनों ही ठीक हैं। लेकिन, अर्जुन को दोनों हो रहे हैं और आपको भी दोनों होंगे; क्योंकि इस जमीन पर देवता को अलग और राक्षस को अलग खोजना बहुत मुश्किल है। वे दोनों ही मिले-जुले हैं। वह हर आदमी में हैं। वह आदमी के दो पहलू हैं। मन दो के बिना होता ही नहीं इसलिए आप ऐसा देवता पुरुष भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा राक्षसी न हो। और आप ऐसा कोई राक्षस भी नहीं खोज सकते, जिसका कोई हिस्सा देवता जैसा हो। रावण के भीतर भी एक कोना राम का होगा और राम के भीतर भी एक कोना रावण का होगा; अन्यथा उनका संसार में होने का कोई उपाय नहीं है।

इस जगत में प्रकट होने का उपाय है—मन और मन है द्वंद्व। इसलिए अच्छे से अच्छे आदमी में थोड़ी-सी कालिख कहीं न कहीं लगी होगी। बुरे से बुरे आदमी में भी एक चमकदार रेखा होगी। वही इन दोनों को आदमी बनाती है, नहीं तो वे आदमी नहीं रह जाएगे, नहीं तो उनके आदमी होने का कोई उपाय नहीं रह जायेगा। यहां तो हर आदमी दोनों हैं। इसलिए जब परम अनुभव का द्वार खुलता है तो दोनों बातें एक साथ घटती हैं। वह जो आपके भीतर राक्षस है, वह भयभीत होने लगता है। और वह जो आपके भीतर दिव्य है, वह आनन्दित होने लगता है।

परमात्मा के सामने दोनों बातें एक साथ घट जाती हैं। यह तो तोड़ कर कहा है, ताकि समझ में आ सके।

अर्जुन कहता है—लोग अनुराग को उपलब्ध होते हैं, हर्षित होते हैं, आपके कीर्तन, आपके नाम को सुनकर। और ऐसे लोग भी हैं, जो भागते हैं दसों दिशाओं में। और देखता हूं सिद्ध-गणों को भी पैर झुकाए, घुटने टेके आपको नमस्कार कर रहे हैं। यह ठीक ही है अन्तर्यामी।

आज अर्जुन को लगा कि ऐसा क्यों है। ऐसा क्यों है कि कोई भगवान का नाम सुनते ही पीड़ित और दुखी हो जाता है? और कोई भगवान का नाम सुनते ही आनंदित, प्रफुल्लित क्यों हो जाता है? जब आप भगवान का नाम सुनकर दुखी होते हैं, तो आप खबर दे रहे हैं कि भगवान आपके लिए कहीं न कहीं मृत्यु से जुड़ा हुआ है। कुछ आप कर रहे हैं, जो भगवान में

टूटेगा और नष्ट होगा। कुछ आप कर रहे हैं, जो धारा के विपरीत है—जो निःसर्ग के प्रतिकूल है। और जब भगवान का नाम सुनकर आप आनंदित होते हैं, तब इसका अर्थ है कि आपके भीतर कोई धारा है, जो भगवान के साथ बह रही है। वह नाम भी सुनकर आप प्रफुल्लित हो जाते हैं।

रामकृष्ण के सामने कोई नाम भी लेते भगवान का, तो वे तत्काल समाधिस्थ हो जाते। नाम लेना मुश्किल हो गया, क्योंकि फिर वे छः-छः घंटे, बारह-बारह घंटे समाधि में रह जाते थे। सड़क से गुजर गए हैं तो उनके भक्तों को उन्हें संभाल कर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई जयराम जी ही न कर दे, नहीं तो वहीं नाचने लगते, वहीं सड़क पर गिर जाते, होश खो देते। कई बार तो कई-कई दिन लग जाते उनका वापस होश आने में। वे इतने आनंदित हो जाते कि यह जगत विसर्जित हो जाता, वे अपने में लीन हो जाते। उनको संभाल कर ले जाना पड़ता था कि कहीं कोई असमय में नाम न ले ले—कोई अकारण ऐसे सहज नाम न ले ले। फिर उन्हें दिनों तक पानी पिलाना पड़ता, दूध देना पड़ता; क्योंकि उन्हें शरीर की कोई सुध न रह जाती। और जब उन्हें होश आता तब वे छाती पीटकर रोने लगते, कि क्या तू नाराज है, इतनी जल्दी वापिस भेज दिया! क्या तू नाराज है कि अपने से इतनी जल्दी दूर कर दिया! वापिस बुला ले! उनकी आंख से आंसू बहते, वापिस बुला ले। कोई नाम ले दे, तो क्या था? रामकृष्ण बड़ी, जिसको हम कहें—शुद्धतम देह। शरीर—जैसे पवित्रतम, जैसे रोआं-रोआं इतना पवित्र कि नाम भी भगवान का पर्याप्त कि रोआं-रोआं कंपित होकर भीतर लीन हो जाय। शरीर—जैसे इतना संवेदनशील!

पुजारी थे रामकृष्ण दक्षिणेश्वर के मंदिर में। पूजा करने जाते थे तो पूजा का थाल गिर जाता हाथ से। क्योंकि देखते महाकाली की मूर्ति, वह देखते ही थाल गिर जाता, दिये बुझ जाते। वे नीचे गिर जाते, पूजा न हो पाती। पूजा करने के लिए भी बड़ा कठोर मन चाहिए। पूजा करने के लिए इतना तो मन चाहिए कि डटे रहें। रामकृष्ण से पूजा ही न हो पाती, क्योंकि थाल हाथ से छूट जाता। देखते आंखों में काली को और सुध-बुध खो देते। फिर बाद के दिनों में तो उन्हें कोई मंदिर में नहीं ले जाते थे। पूजा कोई और कर लेता था, क्योंकि मंदिर में जाना खतरनाक था।

और जिस दिन रामकृष्ण को अनुभव हुआ उस दिन वे दक्षिणेश्वर की छत पर चढ़ गए—छप्पर पर और जोर-जोर से चिल्लाने लगे कि जिसकी

मुझे खोज थी, वह मिल गया। अब जिसको चाहिए, वह जल्दी आओ। कहां हैं वे लोग जिन्हें मैं बांट दूं ? आओ, जल्दी, दूर-दूर से जहां भी जिसको आकांक्षा हो जल्दी आ जाये; क्योंकि जो मुझे चाहिए था, वह मिल गया। क्या मिल गया ? एक संगति, एक संगीत, एक लयबद्धता, उस परमात्म और अपने बीच एक स्वर का तालमेल मिल गया। अब, जैसे ही वह स्वर का तालमेल बैठ जाता है वैसे ही रामकृष्ण नहीं रह जाते, भगवान हो जाते हैं, परमात्मा हो जाते हैं।

कीर्तन का मतलब ही केवल इतना है कि एक सुर-ताल बैठ जाय; और वह जो आदमी होने का होश है, वह खो जाए, और वह जो परमात्मा होने का होश है, वह आ जाय। यह रामकृष्ण की जो बेहोशी है, यह सिर्फ एक तरफ से बेहोशी है—आदमी की तरफ से। दूसरे, भीतर की तरफ से तो परम होश है।

रामकृष्ण कहते थे, कि तुम सोचते हो कि मैं बेहोश हो गया, तुम उल्टा सोचते हो। जब मैं होश में आता हूं तुम्हारे सामने तब मैं बेहोश हो जाता हूं। मैं जिसको भीतर देखता था, वह फिर मुझे दिखाई नहीं पड़ता। तुम जिसे बेहोशी कहते हो, वह होश है मेरे लिए। और तुम जिसे होश कहते हो, वह बेहोशी है। जब मेरी आंख संसार की तरफ होश से भर जाती तब मैं वहां को भूल जाता हूं। अगर यहां मेरा पर्दा गिर जाता है तो मैं वहां हो जाता हूं।

कीर्तन का इतना ही अर्थ है अध्यात्म में कि उससे हम एक नाम के सहारे, एक शब्द के सहारे, एक गीत के सहारे, एक धुन के सहारे, एक नृत्य की गति के सहारे वह जो मनुष्य होने का होश है, वह खो दें और वह जो परमात्मा होने का होश है, उसकी तरफ जायं।

एक मित्र ने पूछा है कि गीता के सम्बन्ध में उन्हें कुछ भी नहीं पूछना, लेकिन यहां जो कीर्तन होता है, उस सम्बन्ध में उन्हें बड़ी अड़चन है। गीता के सम्बन्ध में नहीं पूछना, क्योंकि गीता समझ चुके हैं वे। यहां किसलिए आते हैं पता नहीं। यहां आने का कोई प्रयोजन नहीं है। गीता समझ ही गए हों, तो यहां आने का क्या प्रयोजन है ? चढ़ जाएं किसी मंदिर पर और चिल्ला दें कि आ जाओ, जिनको पाना हो; मुझे मिल गया।

कीर्तन के सम्बन्ध में उन्हें अड़चन है। किया है कभी कीर्तन ? अगर किया है तो अड़चन नहीं हो सकती। और नहीं किया है तो सवाल नहीं उठाना चाहिए। जो नहीं किया है, उसके बाबत नहीं पूछना चाहिए। अड़चन यही होगी कि यह क्या है, लोग नाचने लगते हैं, होश खो देते हैं ! अड़चन यही है कि स्त्री-पुरुष साथ-साथ नाच रहे हैं। अगर इतनी भी बेहोशी न हो कि स्त्री-पुरुष भी न भूलें, तो क्या खाक कुछ भूलेगा ! यह भी होश बना रहा कि मैं पुरुष हूं, वह पास में खड़ी स्त्री है ! आप कीर्तन कर रहे हैं ? इतना भी होश न भूलें, तो क्या खाक कीर्तन होगा !

कीर्तन तो पागलों का रास्ता है—वह जो भूलने को तैयार है बाहर को। फिर क्या होता है, इसे करने का थोड़ी सवाल है। कीर्तन कुछ किया थोड़ी जाता है। कीर्तन तो अपने को धारा में छोड़ना है, फिर जो हो जाय। पर देखने वाले को अड़चन होगी। देखने वाले को सदा ही अड़चन होगी, क्योंकि देखने वाला बाहर खड़ा है। करके देखें, थोड़ी देर के लिए होश खोकर देखें। थोड़ी देर के लिए दूसरे जगत में प्रवेश करें, दूसरा होश उपलब्ध करें। थोड़ी देर के लिए बह जाएं बाहर से और भीतर हो जाएं और होने दें जो हो रहा है—छोड़ दें परमात्मा में। पूरे चौबीस घंटे छोड़ना शायद मुश्किल होगा, क्योंकि आपको ख्याल है दुकान आप चलाते हैं—आपको ख्याल है आप नहीं होंगे, तो संसार का क्या होगा—आपके बिना कुछ चलेगा नहीं। शायद पूरे समय छोड़ना मुश्किल हो, पर घड़ी, आधी घड़ी तो..... कीर्तन सिर्फ एक व्यवस्था है, जिसे थोड़ी देर को हम छोड़ देते हैं। हम अपने से नहीं चलाते, हम सिर्फ छोड़ देते हैं, टु बी लेट गो—अपने को ढीला छोड़ देते हैं, धुन के ऊपर और धीरे-धीरे भीतर जहां ले जाना चाहता है ले जाने लगता है। फिर पैर थिरकने लगते हैं, हाथ-पैर मुद्राएं बनाने लगते हैं, आखें बन्द सी हो जाती हैं, किसी दूसरे लोक में प्रवेश हो जाता है। फिर फिक्र छोड़ें कि कौन बाहर खड़ा है। उसकी थोड़ी फिक्र करनी है। उसकी फिक्र करिएगा तो भीतर नहीं जा सकते।

कीर्तन की कला खो गई, क्योंकि हम अति बुद्धिमान हो गए हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। जिन मित्र ने पूछा है, बुद्धिमान आदमी हैं। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। इसलिये वे कहते हैं, गीता के संबंध में कुछ नहीं पूछना, क्योंकि गीता तो बुद्धिमानी से खुद ही समझ लेंगे, कीर्तन से

अड़चन है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है, बुद्धिमानी का काम संसार है। यहां तो बुद्धि छोड़कर, बुद्धि फेंककर कोई प्रवेश करता है। और यह जो मैं इतनी बातें आपसे बुद्धि की कर रहा हूं, वह सिर्फ इसी आशा में कि किसी दिन आप ऊब जाएंगे इस बुद्धि से। इसे छोड़कर, उतारकर बाहर इसके निकलने की कोशिश करेंगे।

अगर बुद्धिमानी से इतनी बात भी समझ में आ जाय कि बुद्धि काफी नहीं है, तो बुद्धि का काम पूरा हो गया। अगर बुद्धिमानी इतना समझा दे कि इसको छोड़कर पार जाना है, कहीं दूर—इससे हटना है, इसके बंधन और सीमाओं के पार; तो बुद्धिमानी का काम पूरा हो गया। बुद्धिमान आदमी हम उसको कहते हैं, जो बुद्धिमानी को छोड़ने की भी क्षमता रखता है। यह कीर्तन तो बुद्धि को छोड़ने की बात है।

वह, अर्जुन कह रहा है कि आज मैं समझ पाता हूं कि आपके प्रभाव से, आपके प्रभाव के कीर्तन से जगत हर्षित होता है अनुराग से भर जाता है। पर कोई हैं जो घबड़ाते हैं भागते हैं, भयभीत होते हैं, और देखता हूं कि सिद्धों के समुदाय भी कंपित आपको नमस्कार कर रहे हैं।

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें, क्योंकि हे अनंत, हे देवे, हे जगन्निवास जो सत, असत् और उनसे परे अक्षर, अर्थात सच्चिदानंद परम ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं। और हे प्रभु आप आदि देव और सनातन पुरुष हैं और आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्त रूप! आपसे यह सब जगत व्याप्त और परिपूर्ण है और आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा तथा प्रजा के स्वामी, ब्रह्मा, ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिये हजारों बार, हजारों बार नमस्कार। आपके लिये बार-बार नमस्कार। और हे अनन्त सामर्थ्य वाले! आपके लिए आगे से, पीछे से सब तरफ से नमस्कार। हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से नमस्कार होवे। क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली हैं आप, संसार को व्याप्त किये हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं''—ये सारे वचन परमात्मा के प्रति एक धन्य भाव के वचन हैं, एक अहोभाव के।

अर्जुन भयभीत हुआ है, लेकिन धन्यभागी भी हुआ है। यह अनूठा, अद्वितीय अवसर उसे मिला है कि एक झलक मिली है विराट में, जहां सब

सीमाएं टूट जाती हैं—जहां जानने वाला और जाना जाने वाला एक हो जाते हैं—और जहां सृष्टि और सृष्टि का निर्माता, वे भी पीछे छूट जाते हैं और मूल आश्रय और परम धाम का अनुभव होता है। वह धन्यभागी हुआ है। वह अपने धन्य भाव को प्रकट कर रहा है। उसकी वाणी बड़ी अजीब-सी लगेगी। वह कहता है—नमस्कार, बार-बार नमस्कार, हजार बार नमस्कार, आगे से नमस्कार, पीछे से नमस्कार। लगेगा क्या कह रहा है यह! नमस्कार एक दफा कहने से काम चल जाएगा, लेकिन उसका मन नहीं भरता है। वह सब तरफ से नमस्कार कर रहा है, फिर भी उसे लगता है कि जो मुझे मिला है, उसका अनुग्रह मैं मान भी न पाऊंगा। उससे उऋण होने की तो व्यवस्था नहीं है, उसका अनुग्रह भी न मान पाऊंगा।

कहा जाता है, कठिन है पिता के ऋण से मुक्त होना, कठिन है मां के ऋण से मुक्त होना, लेकिन असंभव नहीं। गुरु के ऋण से मुक्त होना असंभव है। और गुरु के ऋण से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो अनुभव गुरु के माध्यम से उपलब्ध होता है, यह जो कृष्ण के माध्यम से अर्जुन को हुआ, अब इस अनुभव के लिए कोई भी तो मूल्य नहीं चुकाया जा सकता—कुछ भी नहीं दिया जा सकता। सच तो यह है कि देने वाला भी कहां बचा अब, क्या दे। अब जो भी दे सब छोटा है, व्यर्थ है। सिर्फ नमस्कार रह जाता है, सिर्फ नमन रह जाता है।

गुरु का हमने जो इतना आदर किया है, वह किसी और कारण से नहीं; क्योंकि कुछ और करने का उपाय ही नहीं है। उसे हम कुछ दे भी नहीं सकते। कुछ दें तो व्यर्थ है। जो हम देंगे, वह संसार का कुछ हिस्सा होगा। और वह हमें संसार के पार ले गया। उस संसार के पार ले जाने वाले अनुभव के लिए संसार का कुछ भी दें, पूरा संसार भी दें तो बेमानी है। अब हम क्या कर सकते हैं? सिर्फ एक अनुग्रह का भाव रह जाता है।

इसलिए अर्जुन कह रहा है—नमस्कार! नमस्कार!! हजार बार नमस्कार!!! कई बहाने खोज रहा है कि आप देवों के देव, आप परमात्मा, आप ब्रह्मा के भी पिता, वह कुछ भी कह रहा है, वह बच्चों जैसी बात है। वह जो कुछ भी कह रहा है, एक ही बात है; वह हर तरफ से कोशिश कर रहा है कि परमात्मा को नमस्कार कर सके।

एक बहुत मजे की बात है। सिर्फ भारत अकेला मुल्क है, जहां गुरु के चरणों में झुकने की लम्बी धारा है। और अगर कहीं भी यह बात गई है तो वह भारत से गई है। दुनिया में कहीं भी गुरु के चरणों में सिर रख कर अपने को सब भांति समर्पित करने की कोई धारणा नहीं है।

इसलिए पश्चिम से जब लोग आते हैं, तो उन्हें जो सबसे बात मुश्किल खटकती है, वह गुरु के प्रति इतनी अनन्य श्रद्धा खटकती है। इतनी श्रद्धा उनको अन्धापन मालूम पड़ती है। और उनको मालूम पड़ना ठीक ही है, क्योंकि किसी के चरणों में सिर रखना और किसी के प्रति इस तरह सब समर्पित कर देना अजीब-सा मालूम पड़ता है। और लगता है यह तो एक तरह की मानव प्रतिष्ठा हो गई, यह तो मनुष्य की पूजा हो गई। और उनको लगना ठीक है, क्योंकि उन्हें जो दिखाई पड़ रहा है, वह मनुष्य ही है।

लेकिन, अगर किसी शिष्य को विराट की थोड़ी-सी भी किरण मिली हो किसी के द्वारा, तो अब वह क्या करे? वह कहां जाय? वह कैसे अपने भार को हल्का करे? उसके पास एक ही उपाय है कि वह सब तरह से झुक जाय। और यह झुकना बड़ा अद्भुत है। यह झुकना दोहरे अर्थों में अद्भुत है। जो मिला है, उसका अनुग्रह इससे प्रगट होता है। और इस झुकने में और मिलने की संभावना सघन हो जाती है। जो बिल्कुल झुकना जानता है, उसे सब मिल जाएगा। यह सवाल नहीं है कि वह कहां झुकता है—झुकने की कला जिसे आती हो।

हम तो कई लोग ऐसे हैं जो नदी में खड़े, पैर पानी में डूबे; लेकिन झुक नहीं सकते इसलिए प्यासे मर रहे हैं। क्योंकि जब झुकें, चुल्लू बनाएं, पानी को भरें तब प्यास बुझ सके। खड़े हैं नदी में लेकिन अकड़े हैं, झुक नहीं सकते। वह घड़ा भी जब पानी में जाय, न झुके, आड़ा न हो, अकड़ा रहे तो भर नहीं सकता। हम नदी में खड़े हैं, परमात्मा चारों तरफ बह रहा है, मगर झुक नहीं सकते। कैसे झुकें! वह जो झुकने का डर है, वह हमें अटका देता है।

धर्म की खोज झुकने की कला है। और जो झुककर चुल्लू भर लेता है, उसे पता चल गया फिर तो वह पूरा झुककर पानी में डुबकी भी मार ले सकता है। फिर तो वह जानता है कि अगर सिर को मैं बिल्कुल झुका दूं, पानी के नीचे चला जाऊं, तो मैं पूरा ही नहा जाऊंगा।

अर्जुन कह रहा है कि जो मैंने जाना, जाना कि तुम्हीं हो सब कुछ। इसलिए हम गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, क्या-क्या नहीं कहते रहे। जिन्होंने कहा होगा, हमें लगता है, कैसे लोग रहे होंगे! लेकिन जिन्होंने कहा है, उन्होंने किसी कारण से कहा है। अगर हम बिना कारण के कह रहे, तो जरूर हमें अजीब-सी बात लगती है कि गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही सब कुछ।

यही अर्जुन कह रहा है कि तुम्हीं सब कुछ हो। परापर ब्रह्म तुम्हीं हो। उसने देखा। गुरु झरोखा बन गया। उसके द्वार से उसने पहली दफा झांका। सारी सीमाएं हट गईं, अनन्त सामने आ गया। उस अनन्त की छाया उस पर पड़ी। पहली दफा जो स्वप्न था, वह टूटा और सत्य उद्घाटित हुआ है। उसका अनुग्रह स्वाभाविक है।

○

संकलन

अरविन्दकुमार

मिलें :

मुल्ला नसरुद्दीन

से—

"और फिर मैं कहना चाहता हूं—याद रखो नसरुद्दीन, धन-संपत्ति हमेशा सुख नहीं लाते हैं।" वृद्ध धर्मगुरु ने समझाया मुल्ला को।

"यह तो माना", बोला नसरुद्दीन, "लेकिन फिर भी वे आपको सबसे अच्छी चिन्तायें और मनपसंद घाव छांटने में सहायता अवश्य देते हैं।"

भगवान श्री रजनीश की अनुकंपा

मेरे लिए रजनीश नाम कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, मुहम्मद, नानक एवं समस्त सद्गुरुओं का पर्याय हो गया है। कोई भी नाम लेता हूं और समस्त नाम ले उठते हैं। किसी का भी स्मरण करता हूं, और स्मरण करने योग्य कोई बचते नहीं। और यह दृष्टि मिली है रजनीश जी से। रजनीश जी की अपार अनुकम्पा का स्मरण आने पर अनुग्रह व आनंद में सहज ही आंसू झर पड़ते हैं। सच ही, कितना पिघला दिया है मेरे प्रभु ने कि अब तो एक चलती-फिरती तरल संवेदना (लिक्यूइड सेन्स-टिव्हिटी) हो गया हूं। जो चीज कभी तनिक भी न छू पाती थी, वह अब बहुत गहरे तक रुला जाती है। हां, कोई धुन बज रही हो रेडियो पर, जो कभी गहरे स्पर्श न कर पाती थी, अब हिचकियों में डाल जाती है। राह चलते खिले हुए फूल दिखते हैं और रोम-रोम प्रभु-स्मरण एवं पुलक से भर जाता है। सामने होते हुए भी साधारणतः लोगों को न दिखलाई पड़ने वाली (अननोटेड) हरियाली हमें न केवल दिखती है वरन् अपने

में समा लेती है और हम संसार में रहकर भी संसार से परे प्रकृति सुन्दरी के ही अंग हो जाते हैं। ...किसी का भी कार्यक्रम हो, कितना भी परंपरागत व पेशेवर (प्रोफेशनल) लोगों द्वारा सम्पन्न किया जा रहा हो, हम सच में डूब जाते हैं। और रोम रोम भगवान श्री रजनीश के प्रति अनुग्रह से भर जाता है कि तुम हमें न मिले होते तो इतना आनन्द जीवन में संभव न होता। इस तरह की घटनाएं नित घटती रहती हैं। तथापि दो घटनाओं का जिक्र यहां करता हूं।

भगवान श्री १९७० की ३० जून को बम्बई के लिये प्रस्थान किये थे। यह बात १९७० के जुलाई माह की है। मेरा एक टेलर मित्र है महबूब। पढ़ाई-लिखाई के नाम पर निरक्षर। पर समझ गहरी, संवेदना सघन। उसी के यहां कार्यक्रम था। एक मुल्ला जी कुरान शरीफ की आयत पढ़ रहे थे। मुल्ला जी का करीब-करीब पेशा था कुरान शरीफ पढ़ना। और जो मुस्लिम भाई एकत्रित थे उनका भी लगभग पेशा ही था कुरान शरीफ सुनना। (तब मैंने संन्यास न लिया था अतः मैं अकेला ही तथाकथित हिन्दू था वहां) पर मैंने तो कुरान शरीफ का एक लफ्ज (शब्द) भी कभी सुना न था। अतः पूर्णतः सचेत था एक-एक शब्द पीने को। मुल्ला जी ने पहली आयत पढ़ी। मैं पाल्थी मारकर तो पहले ही बैठा था, जब उन्होंने आयत पढ़नी शुरू की तो मेरी रीढ़ एकदम सीधी हो गई और आंखें बन्द हो गईं। वे अर्थ समझाने लगे कि "या खुदा, दुनियां में सब तारीफें तेरी हैं, तेरे लिए हैं। अर्थात् जो भी तारीफ के काबिल है वह सब तू ही है।"

बस, इसी एक आयत का अर्थ उन्होंने आधा घण्टा तक समझाया। पूरे समय मेरी आंखें बन्द रहीं। और भीतर नाभि-केन्द्र से मस्तिष्क के केन्द्र (शायद सहस्रार) तक निरंतर एक विद्युत् की धारा या 'रॉड' जैसा बना रहा। इतनी शांति व इतना आनन्द रहा भीतर कि वर्णन असंभव है। उनका प्रवचन समाप्त हो गया। मुझे मालूम था कि प्रवचन समाप्त हुआ। पर जी कहता था कि उस परम शांति में ही डूबा रहूं और कोई मुझे बाधा न दे। पर वे कहां समझते। मुल्ला जी ने स्वयं कहा—'लगता है ठा० साहब सो गये।" मेरे मित्र ने कहा—"नहीं, उन्हें यों ही रहने दें" और यह कहकर वे भीतर चले गए मुल्ला जी व उपस्थित बिरादरी के लिए चाय, पानी का प्रबन्ध करने। मैं भीतर गहन शांति में डूबा रहा और वह विद्युत रॉड निरन्तर बना रहा। तभी एक दूसरे भाई ने कहा—"ठा०

साहब सो गए हैं, इनको जगा दिया जाय", मैं यह सुन रहा था। और चाह रहा था कि ये सब चले जायं, मुझे रात भर वा जब तक चाहूं अपने आनन्द में पड़े रहने दें। पर यह कैसे संभव होता ? मित्र घर के भीतर ही था। अतः उस भाई ने मेरी बांह पकड़कर धीमे से झकझोरा। पर मेरा ध्यान टूटता न था। उसने समझा कि नींद गहरी लग गई है। अतः उसने जोर से झकझोरना शुरू किया। मुल्ला जी व अन्य सब देखते रहे। फलतः मैंने सप्रयास चार-छह गहरी सांसें लीं, तब कहीं बाहर आ सका। धीमे से आंखें खुलीं। उस भाई ने कहा—"ठा० साहब, सो गये थे ?" मैंने इशारे से कहा—"नहीं" और उठ कर सबको प्रणाम कर चला आया।

दूसरी घटना १९७१ के जुलाई माह के आस-पास की है और शायद अधिक गहरी है। मेरे विभाग के एक सहकर्मी मित्र हैं श्री सी० सैमुएल। इनकी पत्नी रेल्वे हॉस्पिटल में स्टाफ नर्स थीं उस समय। अब तो मेट्रन हैं। इनके पति से व इनसे स्वयं से भी मेरे स्नेह सद्भाव रहने के कारण ये मेरे बच्चों आदि का थोड़ा विशेष ख्याल रखती थीं, अस्पताल जाने पर।

इन्हीं के यहां उस शाम, यों ही चला गया था। उनके बच्चे ने मुझे 'ड्राइंग रूम' में बैठाला और कहा कि डैडी घर में हैं, मैं जाकर खबर करता हूं। क्षण भर में बच्चा लौटा और उसने कहा कि डैडी कह रहे हैं कि 'अंकल' को कहो बैठें, मैं दो मिनट में आया। यह कहकर बच्चा चला गया। मैं तब संन्यास ले चुका था व दाढ़ी भी एक-डेढ़ इन्च बढ़ चुकी थी। मैं अकेला ही बैठा था कि मेरी निगाह ईसा मसीह के एक बहुत ही खूबसूरत चित्र पर पड़ी। उस चित्र को देखते-देखते मेरी आंखें जीसस की आंखों से जा मिलीं। और यह क्या ! मेरी पलकें झपतीं ही नहीं, एकटक जीसस की आंखों में निहारती रह गईं जैसे चिपक गई हों, जैसे खुली पोजीशन में थिर हो गई हों। (तब मैं नहीं जानता था कि त्राटक ध्यान किस बला का नाम है) जीसस भी साक्षात् मेरी आंखों में आंखें डाले देखते ही जा रहे हैं। सच, वह तस्वीर मैं भूल गया व जिन्दा जीसस वहां उपस्थित हो गए। उनकी आंखों में अपार करुणा, अपार प्रेम मुझे दिखा। मेरे मन में आया, मन में क्या आना, मैं जीसस से बात ही करने लगा। कि तुम, तुम जो कि इतने प्यारे हो, जो कि हमारे लिए इतने प्यार से भरे हो, तुमको ही सूली पर चढ़ा दिया हमने !!

इस भाव के साथ-साथ मेरे आंसू

झरने लगे। आंसू दाढ़ी को पार कर कुर्ते को गीला करने लगे। (यह बात स्मरणीय है कि मेरी आंखें निरन्तर खुली ही रहीं, अपलक और जीसस की आंखें भी एकटक मुझे देखती रहीं) और मेरे हर भाव को जीसस 'रिस्पाण्ड' करते थे। सच ही प्रेम के क्षण में मौन में बात हो जाती है। आंख की एक चितवन इतना कुछ कह जाती है कि उतना कहने के लिए पन्नों लिखने पड़ते हैं और फिर भी कहना नहीं हो पाता। तो उनकी आंखों की समुद्र से भी अनन्त गुना गहराई उस समय देखने जैसे थी। और उस महा गहरे मौन ने मुझसे कहा—"यह तो होता ही है, सत्य जब भी अवतरित होता है जमीन पर, मनुष्य उसके साथ ऐसा ही व्यवहार करता है। और हम जानते हैं कि मनुष्य ऐसा ही व्यवहार कर सकता है। हम यह जानते हुए भी आते हैं। कुछ लोगों का प्रेम हमें बुलाता है। कुछ लोगों का प्रेम नहीं नहीं जीतेगा। अधिक लोगों का विरोध हमारी गर्दन काटेगा, हम यह जानते हैं। हम यह जानते हुए भी आते हैं क्योंकि हमें तुम जैसे भोले-भाले मनुष्यों से प्रेम है। और प्रेम भी क्या जो मुसकराता हुआ सूली पर न चढ़ सके। सूली तो सत्य का सिंहासन है। और सूली लगाने से मैं मरा कहां। देख न, मैं तुझसे बातें कर रहा हूं और तेरे समक्ष साक्षात हूं।" इतनी बातें जीसस की एक करुणाभरी चितवन कह गई। दोनों की आंखें खुली ही रहीं, मिली ही रहीं, अपलक एकटक। मेरी खुली आंखों से आंसुएं झरती रहीं। एक ऐसा अंतर संबंध कायम हो गया था कि क्या कहना। मैं किसी और लोक में ही था। यह सब डेढ़ मिनट के भीतर घटा। तभी श्री सैमुएल आये और मुझे रोता हुआ देखकर घबड़ा गए कि शायद मैं किसी विपत्ति में आया हूं। पूछने लगे "ब्रदर, क्या बात है?" झकझोरने लगे, "क्यों रो रहे हो?" बोलो न! और तब न चाहते हुए भी मुझे जीसस से वह अवर्ण्य प्यारा अलौकिक अंतर संबंध तोड़ना पड़ा था। तोड़ना पड़ा था कहना गलत होगा, जीसस ने ही तोड़ दिया था। क्योंकि वे तो लापता हो गए थे और वहां सिर्फ तस्वीर लटकती रह गई थी। अतः मैंने गर्दन घुमाई और मित्र की ओर देखा। मित्र ने मेरे आंसू पोंछते हुए पूछा: "क्यों रो रहे, ब्रदर, बतावो न।" मेरे मुंह से निकला: "तुम न समझोगे, क्योंकि तुम मुर्दा हो, मरे हुए हो। अभी क्राइस्ट यहां थे और इतने जिन्दा थे कि तुम तो सिर्फ लाश जैसे ही दिखलाई पड़ रहे हो।" मैं जानता हूं, वे नहीं

समझे। तसवीर टांगकर रखे हैं, परम्परा है, प्रतिष्ठा की भी बात है। पर जीसस से संबंध तो नहीं है। धन्य हो रजनीश, तुम्हारे चरणों में शत्-शत् बार प्रणाम करता हूं जिसने मुझको इतना गलाया-पिघलाया है कि जहां भी बैठता हूं अनन्त से संबंधित हो जाता हूं। तुम्हारे चरणों में प्रणाम !

□ *स्वामी अनेह भारती*
जबलपुर

आह्वान

●

अपने को खोलो, पहचानो
बस यही सत्य है।
शून्य-शून्य का आत्मदान दो,
छोड़ो अब, चुप बैठो, खाली कर दो
अतलगत सारे विचार को मर जाने दो।

नैवेद्य समर्पण करो असीम में, खुद को,
और तुम भी तो ससीम नहीं।

भावी तुममें ही जन्मेगा फिर कैसा उद्यम ?
जाने दो, खाली हो जाओ—
सोचोगे; तृष्णा जन्मेगी, सारे विफल प्रयास
अन्धा कर देंगे।

ध्यान जाएगा मिट्टी पर जिसमें तुम अनुस्यूत हो
रीते बन जाओ, ज्योत दिखेगी, और
स्वतः परमात्मा को उपलब्ध बनोगे।

□ *सुमन सरीन*

कृष्ण और गीता

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक ९ वां, श्लोक ४१ से ४४ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

गीता के ये प्रवचन अनवरत पिछले माहों के 'युक्तांद' के अंकों में हमने संजोए हैं, उसी क्रम शृङ्खला में प्रस्तुत है यह ९ वां प्रवचन। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है—प्रभु से प्रार्थना करते हैं तो कहते हैं कि सारे दुख मेरे मिटा दे, सुख ही सुख शेष रह जायं। और आपने कहा कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो प्रभु से हम क्या मांगें, क्या प्रार्थना करें ?

जहां तक मांग है, वहां तक प्रभु से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। प्रार्थना मांग नहीं है। ज्यादा उचित हो कि कहें प्रार्थना धन्यवाद है, मांग नहीं। जो नहीं मिला है, उसकी मांग नहीं है प्रार्थना; जो मिला है, उसके अनुग्रह का धन्यबाद है—थैंक्स गिविंग। कुछ मांगें मत। आपकी मांग ही आपके, परमात्मा के बीच बाधा बन जाएगी।

क्योंकि जब भी हम कुछ मांगते हैं, तो उसका अर्थ क्या होता है ? उसका अर्थ होता है—जो हम मांग रहे हैं, वह परमात्मा से भी बड़ा है।

एक आदमी परमात्मा से धन मांग रहा है। उसका अर्थ हुआ कि लक्ष्य धन है, परमात्मा तो केवल साधन है। एक आदमी सुख मांग रहा है, उसका अर्थ हुआ कि सुख बड़ा है। परमात्मा से मिल सकता है, इसलिए परमात्मा से मांग रहे हैं। लेकिन परमात्मा केवल माध्यम हो गया, परमात्मा केवल साधन हो गया। हम परमात्मा से भी सेवा ले रहे हैं।

जब भी हम कुछ मांगते हैं तो जो मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण है। जिससे हम मांगते हैं, वह महत्वपूर्ण नहीं है। वह अगर महत्वपूर्ण मालूम होता है तो सिर्फ इसलिए कि जो हम चाहते हैं वह उससे मिल सकता है। लेकिन उसका महत्व द्वितीय है—दोयम्, नम्बर दो है।

परमात्मा से कुछ भी मांगा नहीं जा सकता। और जो मांगते हैं, उनका परमात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। परमात्मा को तो, जो मिला है, उसके लिए धन्यवाद दिया जा सकता है। और जो मिला है, वह बहुत है—असीम। लेकिन जो मिला है, उसके लिए हम धन्यवाद नहीं देते। जो नहीं मिला है, उसके लिए हम मांग करते हैं—शिकायत करते हैं।

अभाव ही हमारा मन देखता है। जो हमारे पास है, जो हमें मिला है—अकारण जीवन, अस्तित्व, जो खिलावट हमें मिली है—उसके लिए कोई अनुग्रह नहीं है। प्रार्थना अनुग्रह का भाव है।

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास जब विवेकानन्द आए, तो उनके घर की हालत बड़ी बुरी थी। पिता मर गए थे। और पिता मौजी आदमी थे—कोई सम्पत्ति तो छोड़ नहीं गए थे, उल्टा कर्ज छोड़ गए थे। और विवेकानंद को कुछ भी न सूझता था कि कर्ज कैसे चुके। घर में खाने को भी रोटी नहीं थी। और ऐसा अक्सर हो जाता था कि घर में इतना थोड़ा-बहुत अन्न जुट पाता कि मां और बेटे दोनों थे, तो एक का ही भोजन हो सकता था। विवेकानन्द मां को कहते कि मैं घर आज भोजन नहीं करूंगा, किसी मित्र के घर निमंत्रण है। मां भोजन कर ले इसलिए घर से बाहर चले जाते। कहीं भी गली-कूचों में चक्कर लगाकर—कोई मित्र का निमंत्रण नहीं होता—वापिस खुशी-खुशी लौट आते कि बहुत अच्छा भोजन मिला, ताकि मां भोजन कर ले।

रामकृष्ण को पता लगा तो उन्होंने कहा, तू भी पागल है, तू जाकर मां से क्यों नहीं मांग लेता! तू रोज यहां आता है। जा मंदिर में और मां

से मांग ले, क्या तुझे चाहिए। रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानन्द को जाना पड़ा। रामकृष्ण बाहर बैठे रहे। आधी घड़ी बीती, एक घड़ी बीती, घंटा बीतने लगा। तब उन्होंने भीतर झांककर देखा, विवेकानन्द आंख बन्द किए खड़े हैं, आंख से आनन्द के आंसू बह रहे हैं, सारे शरीर में रोमांच है।

फिर जब विवेकानन्द बाहर आए तो रामकृष्ण ने कहा, मांग लिया मां से ? विवेकानन्द ने कहा, वह तो मैं भूल ही गया। जो मिला है वह इतना ज्यादा है कि मैं तो सिर्फ अनुग्रह के आनन्द में डूब गया। अब दोबारा जब जाऊंगा तब मांग लूंगा। दूसरे दिन भी यही हुआ, तीसरे दिन भी यही हुआ। रामकृष्ण ने कहा, पागल तू मांगता क्यों नहीं है ! तो विवेकानन्द ने कहा, आप नाहक ही मेरी परीक्षा ले रहे हैं। भीतर जाता हूं तो यह भूल ही जाता हूं कि वे क्षुद्र जरूरतें, जो मुझे घेरे हैं, वे भी हैं, उनका कोई अस्तित्व है। जब मां के सामने होता हूं तो विराट के सामने होता हूं, तो क्षुद्र की सारी बात भूल जाती है। यह मुझसे नहीं हो सकेगा।

रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को कहा कि इसीलिए इसे भेजता था कि अगर इसकी प्रार्थना अभी भी मांग बन सकती है, तो इसे प्रार्थना की कला नहीं आई। अगर यह अब भी मांग सकता है प्रार्थना के क्षण में, तो इसका मन संसार में ही उलझा है, परमात्मा की तरफ उठा नहीं है।

आप पूछते हैं कि क्या मांगें। मांगें मत। मांग संसार है। और जो मांगना छोड़ देता है, वही केवल परमात्मा में प्रवेश करता है। तो कुछ भी न मांगें, सुख नहीं, कुछ भी मत मांगें। मोक्ष भी मत मांगें, मुक्ति भी मत मांगें; क्योंकि मांग ही उपद्रव है—मांग ही बाधा है। वह जो मांगने वाला मन है, वह प्रार्थना में हो ही नहीं पाता।

साधारणतः हमने सारी प्रार्थना को मांग बना लिया है। मांगना चाहते हैं तभी हम प्रार्थना करते हैं। प्रार्थी का मतलब ही हो गया—मांगने वाला, अन्यथा हम प्रार्थना ही नहीं करते। जब मांगना होता है तभी प्रार्थना करते हैं। जब नहीं मांगना होता है तो प्रार्थना भी खो जाती है। हमारी सारी प्रार्थना भिक्षु की, मांगने वाले की प्रार्थना है। हम भिक्षा-पात्र लेकर ही परमात्मा के सामने खड़े होते हैं। यह ढंग उचित नहीं है। यह प्रार्थना का ढंग ही नहीं है। फिर प्रार्थना क्या है ?

साधारणतः लोग समझते हैं कि प्रार्थना कुछ करने की चीज है। क्या आपने जाकर स्तुति की, कि गुणगान किया, कि भगवान की बड़ी प्रशंसा की! कुछ करने की चीज है? प्रार्थना न तो मांग है और न कुछ करने की चीज है। प्रार्थना एक मनोदशा है। उचित होगा कहना कि प्रार्थना की नहीं जाती। आप प्रार्थना में हो सकते हैं—यू कैन नाट डू प्रेयर, यू कैन बी इन इट। प्रार्थना में हो सकते हैं, प्रार्थना का नहीं जा सकती। वह कोई कृत्य नहीं है कि आपने कुछ किया, घंटा बजाया, नाम लिया, वे सब बाह्य उपकरण हैं।

प्रार्थना भीतर की एक मनोदशा है—ए स्टेट आफ माइंड। दो तरह की मनोदशाएं हैं—मांग, डिजायर, वासना। वासना कहती है—यह चाहिए। मन की एक दशा है कि यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। चौबीस घंटे हम वासना में—यह चाहिए, यह चाहिए, यह चाहिए। एक क्षण ऐसा नहीं है जब वासना न हो—कुछ न कुछ चाहिए। चाह धुएं की तरह चारों तरफ घेरे रहती है।

एक स्थिति है—वासना। अगर आप मांग लेंगे, प्रार्थना कर रहे हैं तो वासना बनी हुई है, स्थिति बदली ही नहीं। वहां आप फिर कुछ मांग रहे हैं। बाजार में कुछ मांग रहे थे, पत्नी से कुछ मांग रहे थे, पति से कुछ मांग रहे थे, बेटे से, बाप से कुछ मांग रहे थे, समाज से कुछ मांग रहे थे, राज्य से कुछ मांग रहे थे, संसार से कुछ मांग रहे थे, अब परमात्मा से मांग रहे हैं। जिससे मांग रहे थे, वह बदल गया; लेकिन मांगने वाला मन, वह भिखारी वासना मौजूद है। कभी इससे मांगा, कभी उससे मांगा। जब कहीं भी न मिल सका तो लोग भगवान से मांगने लगते हैं, सोचते हैं जो कहीं से नहीं मिला, वह भगवान से मिल जाएगा। मांगतें लेकिन जरूर हैं। यह वासना है।

प्रार्थना बिल्कुल उल्टी अवस्था है। वासना है—दौड़, कुछ जो नहीं है, उसके लिए। प्रार्थना—जो है, उसका आनन्द भाव। प्रार्थना है ठहर जाना, वासना है दौड़। वासना है भविष्य में, प्रार्थना है अभी और यहीं। प्रार्थनापूर्ण चित्त का अर्थ है—मिट गया अतीत, मिट गया भविष्य, यह क्षण सब कुछ है। खड़े हैं परमात्मा की प्रतिमा के सामने और, और यह प्रतिमा कहीं भी हो सकती है—एक वृक्ष में हो सकती है, एक नदी में हो सकती है,

एक व्यक्ति में हो सकती है, आपके बेटे में हो सकती है, आपकी पत्नी की आंखों में हो सकती है, पत्थर में हो सकती है, आकार में, निराकार में, कहीं भी हो सकती है।

जहां भी आप ऐसा क्षण खोज लें कि आप में अब कोई दौड़ नहीं है मन की, मन ठहर गया है; जैसे धारा रुक गई हो, कोई गति नहीं है। इस क्षण में जो आनन्द भाव उत्पन्न हो जाता है, और जो थिरक फैल जाती है, इस क्षण में जो पुलकित हो उठते हैं प्राण के कण-कण, भीतर तक, केन्द्र तक, जो भनक सुनाई पड़ने लगती है अनन्त के स्वर की, वह प्रार्थना है। इस प्रार्थना से भी नृत्य पैदा हो जाता है। क्योंकि जब प्राण आनन्दित होते हैं तो पैर भी नाचने लगते हैं। इस आनन्द से स्वर भी फूट पड़ता है। जब भीतर की वीणा बजती है, तो गीत भी फूट पड़ता है। यही फर्क है।

आप भी जाकर मंदिर में गीत गा सकते हैं मीरा का। लेकिन आप गा रहे हैं कुछ पाने के लिए। मीरा ने भी गाया था। गाया था, कुछ भीतर मिल गया था, उसकी भनक शरीर तक दौड़ गई थी। मीरा नाचने लगी, गाने लगी। इस गाने-नाचने में प्रार्थना नहीं है। ये तो प्रार्थना के परिणाम हैं, यह तो प्रार्थना की बाईप्राडक्ट है। यह तो जैसे गेहूं ऊगता है तो उसके साथ भूसा भी ऊग आता है। जब भीतर प्रार्थना होती है, तो यह आनन्द बाहर भी प्रकट होने लगता है। पर हम तो मीरा को बाहर से देखते हैं, तो हमें लगता है मीरा गीत गा रही है, नाच रही है। शायद हम भी नाचें और गीत गाएं ऐसा हो, तो जो मीरा को भीतर हुआ वह हमें भी हो जाय। यही तर्क की भूल हो जाती है। यही भूल हो जाती है।

मीरा को जो भीतर हो रहा है, उसके कारण नृत्य पैदा हो रहा है। नृत्य के कारण भीतर कुछ होता होता, तो सभी नर्तकियां मीरा हो जातीं। और गीत के कारण अगर भीतर कुछ होता होता, तो सभी गायक कभी के वहां पहुंच गए होते। आप कितना अच्छा गा पाएंगे! कुशल गायक हैं, उनमें आप क्या जीत पाएंगे! कुशल नर्तक हैं, आप क्या नाच पाएंगे!

नहीं, मीरा को जो हुआ है, यह गान में और नृत्य में उसकी प्रतिध्वनि भर सुनाई पड़ रही है। वह जो हुआ है, वह इसके बाहर है। इसलिए जरूरी नहीं है कि गान और नृत्य पैदा हों ही, क्योंकि महावीर को हमने

नाचते नहीं देखा, बुद्ध को हमने गाते नहीं देखा। तो कोई ऐसा भी जरूरी नहीं है कि वह धुन बाहर इस भांति आए, वह अनेक रूपों में आ सकती है—व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करेगी।

बुद्ध के बाहर वह नाचकर नहीं आती। बुद्ध के बाहर वह प्रशान्त, घनी शान्त बन कर आती है। बुद्ध का व्यक्तित्व अलग है। भीतर तो वही घटता है, जो मीरा को घटता है। भीतर बुद्ध के भी वही घटता है। लेकिन मीरा स्त्री है, और मीरा के पैर में जो है, वह बुद्ध के पैरों में नहीं है। वह मीरा की वाणी में जो है, वह बुद्ध की वाणी में नहीं है। बुद्ध का व्यक्तित्व और है।

तो वही घटना भीतर घटती है, लेकिन जिससे छनकर आती है, वह व्यक्तित्व अलग है। तो बुद्ध के बाहर वह प्रगाढ़ शान्ति हो जाती है। जिसने बुद्ध को देखा है, वह सोच ही नहीं सकता कि वह परम अनुभव नृत्य कैसे बनेगा! क्योंकि बुद्ध को तो देखा है, वह बिल्कुल शान्त हो गए, कुछ भी कम्पन नहीं होता बाहर, पत्थर की मूर्ति हो गए। जिन्होंने मीरा को देखा है, वे भरोसा नहीं कर सकते कि शान्त, इस तरह की शान्त स्थिति कैसे बनेगी; क्योंकि मीरा को हमने बावली होते देखा, पागल होते देखा। उसका शरीर नृत्य से भर गया है। ये व्यक्तियों के भेद हैं।

लेकिन आप चाहें तो बुद्ध जैसे मूर्ति बनकर भी बैठ जा सकते हैं, तो भी भीतर की घटना नहीं घटेगी; क्योंकि भीतर की घटना प्राथमिक है, बाहर जो घटता है—वह गौण है, वह उसका परिणाम है, उसका फल है। बाहर से भीतर की तरफ जाने का कोई उपाय नहीं है। भीतर से ही बाहर की तरफ आने का उपाय है।

प्रार्थना—ठहरा हुआ क्षण है मन का। वासना—भागता हुआ क्षण है मन का। वासना है दौड़, प्रार्थना है ठहराव। अगर आप विश्राम के क्षण में किसी वृक्ष के पास बैठ गए, तो वह वृक्ष आपके लिए थोड़ी देर में परमात्मा हो जाएगा। जहां भी हम विश्राम के क्षण में हो जाते हैं, वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, राम—ये भगवान थे? ये भगवान नहीं थे, क्योंकि भगवान तो निराकार है और ये सब तो साकार थे।

तो हो सकता है उनको भगवान की अनुभूति हुई हो, लेकिन वे भगवान नहीं थे। आकार क्या है ? किसे हम आकार कहते हैं ? इस जगत में कुछ भी है, जो साकार है ? इस जगत में सभी कुछ निराकार है। लेकिन हमारे पास देखने वाली आंखें सीमित हैं। इसलिए निराकार भी हमें आकार दिखाई पड़ता है। आप अपनी खिड़की से आकाश को देखते हैं तो खिड़की के बराबर चौखटे में ही आकाश दिखाई पड़ता है। आप अपने नीले चश्मे से जगत को देखते हैं तो जगत नीला दिखाई पड़ता है। आपकी देखने की क्षमता के कारण आकार निर्मित होता है, अन्यथा आकार कहीं भी नहीं है। आप कहेंगे यह तो बात कुछ जंचती नहीं। हमारे शरीर का तो कम से कम आकार है। वहां भी आकार नहीं है। कहां आपका शरीर समाप्त होता है, आपको पता है ? अगर सूरज ठंडा हो जाय, दस करोड़ मील दूर है, अगर ठंडा हो जाय, तो आपके शरीर का आपको पता है क्या होगा ? उसी वक्त ठंडा हो जाय। तो आपका शरीर आपकी चमड़ी पर नहीं समाप्त होता। वह दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है; क्योंकि उसके बिना आप जी नहीं सकते। वह जो दस करोड़ मील दूर सूरज है, वह भी आपके शरीर का हिस्सा है, क्योंकि आपका शरीर उसके बिना जी नहीं सकता। शरीर जुड़ा है उससे। कहां आपका शरीर खत्म होता है ? आपके ऊपर ? अगर आपके पिता न होते तो आप हो सकते थे ? पीछे लौटें। तब आपको पता चलेगा अरबों-खरबों वर्षों का जो इतिहास है, उससे आपका शरीर निर्मित हुआ है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जीवाणु चल रहा है, वह आपका शरीर बना है। अगर उस शृङ्खला में एक जीवाणु अलग हो जाय तो आप नहीं होंगे। तो समय में पूरा इतिहास आप में समाया हुआ है। अभी, इस क्षण सारा जगत आपमें समाया हुआ है। अगर इस जगत में जरा भी फर्क हो जाय आप नहीं होंगे। तो आपका शरीर अनन्त-अनन्त शक्तियों का एक मेल है। आपको जितना दिखाई पड़ता है, उसको आप शरीर मान लेते हैं। और अगर यह सच है कि अनन्त इतिहास आप में समाया हुआ है, तो अनन्त भविष्य भी आपमें समाया हुआ है। वह आपसे ही पैदा होगा।

आप कहां शुरू होते हैं ? कहां समाप्त होते हैं ? आपने अपने जन्म-दिन को अपना जन्म-दिन समझ लिया है, यह आपकी समझ की सीमा है। कब आप पैदा हुए ? आपका जीवाणु चल रहा है अरबों-अरबों, खरबों वर्षों

से। जब आप पैदा नहीं हुए थे तो वह आपकी मां में था, आपके पिता में था। और जब आपके मां-बाप भी पैदा नहीं हुए थे तब वह किसी और में था, लेकिन वह चल रहा है। आप थे अनन्त काल से और जब आप नहीं होंगे तब भी वह चलता रहेगा अनन्त काल तक। कहां आपका शरीर समाप्त होता है ? कहां शुरू होता है ? कहां है सीमा उसकी ? अभी इस क्षण में ही कहां है उसकी सीमा ? किस जगह हम मानें कि यहां मेरा शरीर समाप्त हुआ। सूरज को हम अपने शरीर का हिस्सा मानें कि न मानें—यह बड़ा सवाल है। वैज्ञानिक पूछते हैं कि कहां हम समाप्त करें शरीर को ? वहां सूरज पर जरा-सी हलचल होती है और आपमें फर्क हो जाता है, आपको पता नहीं है। पिछले बीस वर्षों में सूरज और आदमी के शरीर पर गहन अध्ययन हुए हैं।

अमरीका के एक रुग्ण चिकित्सालय में, वे बड़े हैरान थे कि किसी-किसी दिन विक्षिप्त लोगों का जो हिस्सा था, उसमें किसी-किसी दिन पागल ज्यादा पागल मालूम पड़ते थे। और कभी-कभी बहुत शान्त मालूम पड़ते थे और कभी-कभी बहुत पागल मालूम पड़ते थे। और जब यह पागलपन का दौर आता था तो किसी एक पागल को नहीं आता था, ये सारे पागलों को आता था। ऐसा लगता था कि पीरियाडिकल सर्किल है, जैसे समुद्र में बाढ़ आती है उतर जाती है, ज्वार चढ़ता है भाटा आ जाता है।

तो तीन वर्ष तक निरन्तर उन पागलों के रिकार्ड को रखा गया कि किस दिन, कब, क्यों, कोई कारण नहीं मिलता था। क्योंकि भोजन में कोई फर्क पड़ा, नहीं पड़ा। कोई अधिकारी बदले गए, नहीं बदले गए। कोई चिकित्सा बदली गई, नहीं बदली गई। कोई फर्क नहीं है, जैसी व्यवस्था है, रुटीन है वैसा सब चल रहा है। अचानक एक दिन सारे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। एक दिन सारे पागल ज्यादा शान्त हो जाते हैं। सब तरह की खोजबीन के बाद जो नतीजा हाथ में आया, वह कि सूरज से सम्बन्ध है।

सूरज पर तूफान जब उठते हैं, तब वे पागल ज्यादा पागल हो जाते हैं। और जब सूरज का तूफान शान्त हो जाता है, तो वे पागल शान्त हो जाते हैं। और अब तो एक पूरा विज्ञान खड़ा हो रहा है कि सूरज पर जो कुछ घटता है, उसका ठीक अध्ययन किए बिना आदमी के जीवन में क्या

घटता है, नहीं कहा जा सकता। हर नब्बे साल में सूरज पर बड़ी क्रान्ति घटित होती है। और जमीन पर जो भी उपद्रव होते हैं, वे हर नब्बे साल के पीरियड में होते हैं। हर ग्यारह साल में सूरज पर छोटा तूफान आता है। जमीन पर जो युद्ध होते हैं, उनका पीरियाडिकल जो वर्तुल है, वह ग्यारह साल है।

अमरीका में ऐसा अध्ययन हो तो समझ में आता है। रूस में भी इस तरफ अध्ययन हुए और रूस के मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक भी चकित हो गए हैं। और रूस में तो मानना बहुत मुश्किल है कि उन्नीस सौ सत्तरह (१९१७) की जो क्रान्ति है—वह लेनिन, ट्राटिस्की और कम्यूनिज्म के कारण नहीं हुई, बल्कि चांद या सूरज पर कोई उपद्रव हुआ, उसके कारण हुई। तब रूस भी क्या करेगा! आज का सारा अध्ययन यह बता रहा है कि सूरज पर जो भी घटित होता है, आदमी उससे तत्क्षण प्रभावित होता है—तत्क्षण! और आदमी के जगत में जो भी घटित होता है, वह सूरज से तारों से जुड़ा है। कहां आप समाप्त होते हैं? कहां आपकी सीमा है? आपकी भी सीमा नहीं है, राम की तो फिक्र छोड़ें, कृष्ण की तो फिक्र छोड़ें, आप भी असीम हैं। यहां प्रत्येक बिन्दु विराट है और यहां प्रत्येक बूंद सागर है। हमें बूंद दिखाई पड़ती है, क्योंकि देखने की हमारी क्षमता सीमित है। तो जैसे-जैसे क्षमता बढ़ती है, वैसे-वैसे आकार छूटने लगता है, निराकार दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे क्षमता विराट होने लगती है, बड़ी होने लगती है, विराट प्रकट होने लगता है। जिस दिन हमारे पास देखने का कोई ढांचा नहीं रह जाता, दृष्टि पूरी मुक्त और शून्य हो जाती है—उस दिन हम विराट के सामने खड़े हो जाते हैं।

राम को आप देखते तो आप तो आदमी ही कहते, क्योंकि आप आदमी के सिवाय राम में भी कुछ नहीं देख सकते। आप कृष्ण को देखते तो उनको भी आदमी कहते हैं। क्योंकि आपके देखने का ढंग है। लेकिन कुछ और तरह के देखने वाले लोग भी हैं। उन्होंने कृष्ण में देख लिया भगवान को, उन्होंने राम में देख लिया भगवान को।

लोग मुझसे पूछते हैं कि राम हुए, कृष्ण हुए, बुद्ध-महावीर हुए, जीसस हुए, लाओत्से हुए—ये सब बहुत पहले हुए, अब क्यों नहीं होते? अब भी होते हैं। लेकिन पहले उन्हें पहिचानने वाले ज्यादा लोग थे, अब उन्हें

पहचानने वाले कम लोग हैं, बस उतना ही फर्क है। और आप इस फिक्र में न पड़ें। अगर आप बुद्ध के समय भी होते तो आप बुद्ध को पहचान नहीं सकते थे। और आप थे, यह कहना ठीक नहीं कि होते, आप थे। और नहीं पहचान पाए इसलिए आप अभी भी हैं, नहीं तो अभी तक तिरोहित हो गए होते। अगर पहचान गए होते तो वह रास्ता आपको दिख गया होता, आप अभी तक वाष्पीभूत होकर दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते। हम हैं इसलिए, तभी तक हम हैं जब तक हम नहीं पहचान पाते, जब तक हमें नहीं दिखाई पड़ पाता। एक व्यक्ति में भी हमें झलक मिल जाय विराट की, तो फिर सब में मिलने लगेगी। वह तो शुरुआत है। कोई राम और कृष्ण अन्त थोड़े ही हैं, शुरुआत हैं। उनमें दिखाई पड़ जाय, तो फिर कहीं भी दिखाई पड़ने लगेगी। फिर हमारा अनुभव हो गया।

इसलिए हमने पत्थर की भी मूर्तियां बनाईं। जिन्होंने पत्थर की मूर्तियां बनाईं, बड़े होशियार लोग थे। क्योंकि उन्हें एक दफा दिखाई पड़ गया, तो फिर पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगा। एक दफा दिखाई पड़ गया, तो कहीं भी दिखाई पड़ेगा। फिर पत्थर में भी वही दिखाई पड़ेगा। फिर कोई कारण नहीं है, फिर कहीं कोई बाधा नहीं है। फिर कोई रुकावट रोक नहीं सकती। जो मुझे दिख गया एक दफा, वह फिर मैं कहीं भी देख लूंगा। लेकिन देखने के लिए बड़ी बात यह नहीं है कि राम भगवान हैं या नहीं, यह बड़ा सवाल नहीं है, यह असंगत है। बड़ा सवाल यह है कि मेरे पास भगवान को देखने की आंख है या नहीं।

बुद्ध के पिछले जन्म की घटना है कि—बुद्ध पिछले जन्म में, जब वे अज्ञानी थे और बुद्ध नहीं हुए थे। अज्ञान का एक ही मतलब है हमारे मुल्क में कि जब तक उनको पता नहीं चला था कि मैं भगवान हूं—जब तक वे जानते थे कि मैं आदमी हूं। तब जब वे अज्ञानी थे, उनके गांव में एक बुद्ध पुरुष का आगमन हुआ। तो बुद्ध उनका दर्शन करने गए। उनके चरणों में गिरकर नमस्कार किया और जब वे नमस्कार करके खड़े हुए तो बहुत चकित हो गये—समझ में नहीं पड़ा कि क्या हो गया। वे जो बुद्ध पुरुष थे, उन्होंने बुद्ध के चरणों में सिर रख कर नमस्कार किया। तो बुद्ध घबड़ा गये, उन्होंने कहा, आप यह क्या करते हैं। इससे मुझे पाप होगा। मैं आपके पैर छूऊं, यह उचित है, क्योंकि आप पा चुके हैं, मैं अभी भटक रहा हूं; आप मंजिल

हैं, मैं अभी रास्ता हूं ! मैं आपके चरणों में झुकूं, यह ठीक है। अभी मेरी खोज बाकी है, आपकी खोज पूरी हो गई। आप क्यों मेरे चरणों में झुकते हैं ?

तो उन 'बुद्ध पुरुष' ने बुद्ध को कहा, तुझे वही दिखाई पड़ता है अभी जो तू देख सकता है। मैं तेरे भीतर उसको भी देखता हूं, जो तुझे दिखाई नहीं पड़ता। मैंने जिसे पा लिया है, वह मुझे तेरे भीतर भी दिखाई पड़ता है। मैं तेरे चरण नहीं छू रहा हूं, मैं उसके चरण छू रहा हूं। और एक दिन तुझे भी वह दिखाई पड़ जायगा, यह समय का भर फासला है। चरणों में कोई फर्क नहीं है, समय का भर फासला है। जो आज तुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है, मुझे दिखाई पड़ रहा है, वह कल तुझे भी दिखाई पड़ जायगा।

और जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो उन्होंने पहला स्मरण अपने पिछले जन्म के उस 'बुद्ध-पुरुष' का किया। उन्होंने कहा कि आज मैं समझ पाया कि उन्हें क्या दिखाई पड़ा होगा। आज मुझे भी दिखाई पड़ रहा है, लेकिन यह सदा मेरे साथ था और मुझमें दिखाई नहीं पड़ा। नजर न हो, तो आपके पास भी रखी हो सम्पदा तो भी दिखाई नहीं पड़ेगी। अन्धे के पास दिया जल रहा हो, क्या अर्थ है ? और बहरे के पास वीणा बज रही हो, क्या अर्थ है ? कोई अर्थ नहीं, क्योंकि वह घटना घट ही नहीं रही। जब तक आपके पास संवेदना की इन्द्रिय न हो तब तक कुछ भी नहीं है।

अगर आपको भगवान दिखाई न पड़ता हो राम में, तो इसकी फिक्र में मत पड़ना कि राम भगवान हैं या नहीं ? इसका आपके पास निर्णय करने का कोई उपाय नहीं है। कोई मापदंड कोई तराजू नहीं है जिस पर नाप सकें कि कौन आदमी भगवान है और कौन नहीं। इस फिक्र में भी मत पड़ना, यह व्यर्थ की कोशिश है। अगर आपको राम में, कृष्ण में, बुद्ध में कहीं भगवान न दिखाई पड़ते हों, तो आप इस फिक्र में पड़ना कि मेरे पास आंख भगवान को देखने की है या नहीं—उसकी खोज में लग जाना। जिस दिन वह आंख आपके पास होगी, उस दिन राम में ही नहीं, रावण में भी भगवान दिखाई पड़ेंगे। उस दिन फिर कोई जगह ही न बचेगी, जहां वे न हों।

नानक गए मक्का, रात थके थे तो सो गए। पुजारी बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि नानक ने पैर कर लिये थे मक्का के पवित्र मन्दिर की तरफ।

तो पुजारियों ने कहा कि नासमझ अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है; और इतनी भी तुझे अक्ल नहीं कि पवित्र मंदिर की तरफ पैर किए हुए है। तो नानक ने कहा कि तुम मेरे पैर वहां कर दो जहां उसका पवित्र मन्दिर न हो। मैं भी बड़ी चिन्ता में हूं, तुम आ गए अच्छा हुआ। मैंने भी बहुत सोचा कि पैर कहां करूं, क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। और कहीं तो पैर करूंगा। सोना है मुझे, थका-मांदा हूं। अब तुम आ गए, तुम हल कर दो। तुम मेरे पैर पकड़ो और उस तरफ कर दो, जहां वह न हो।

कहानी बड़ी मीठी है। और यह कि पुजारियों ने उनके पैर सब तरफ करने की कोशिश की और बड़ी मुश्किल में पड़ गए। जहां पैर किए, वहीं मक्का हट गया। मक्का हटा कि नहीं यह बड़ा सवाल नहीं है। बड़ा सवाल यही है कि सच में ही कहां पैर करियेगा जहां भगवान नहीं है। नानक को अगर एक बार दिखाई पड़ गया है उसका होना, तो अब कोई जगह नहीं है, जहां वह न हो। अब वह सब जगह है। अब तो कहीं भी पैर करो, कहीं भी सिर रखो; पैर भी उस पर पड़ेंगे, सिर भी उस पर पड़ेगा। उठो-बैठो तो उसके भीतर, चलो तो उसके भीतर, अब वही है और कुछ भी नहीं है।

देखने की क्षमता हो, नानक की आंख हो, तो फिर सब जगह है। और हमारी आंख हो, तो फिर कहीं भी नहीं है, फिर हमको चिन्ता इसकी भी होती है कि राम में भी शक होता है, बुद्ध में भी शक होता है। और आप ऐसा मत समझना कि आपको ही शक होता है। उस दिन भी जो लोग थे, उनको भी शक था। कोई सारे लोगों ने बुद्ध को मान लिया था, ऐसा नहीं है, कोई सारे लोगों ने महावीर को मान लिया ऐसा भी नहीं है, कि सारे लोगों ने कृष्ण को मान लिया था ऐसा भी नहीं है। बहुत थोड़े से लोग पहचान पाते हैं। तो जो पहचान ले, वह धन्यभागी है। इस पहचानने से कोई कृष्ण को फायदा होता है, ऐसा नहीं है; इस पहचानने से वह जो पहचान लेता है, उसको ही फायदा हो जाता है। एक में भी दिख जाय, तो देखने की कला आ जाती है, फिर सब में देखा जा सकता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कीर्तन के समय हम मन के सामने कौन-सी छबि रखें, जिससे मन केन्द्रित हो जाय ?

मन को केन्द्रित नहीं करना है, मन को विसर्जित करना है। इन दोनों में फर्क है। मन केन्द्रित भी हो जाय, तो भी मन रहेगा। कोई छवि मन में बना ली, तो छवि पर मन केन्द्रित हो जाएगा; लेकिन छवि रहेगी, मन भी रहेगा, दो बने रहेंगे। कीर्तन का अन्तिम लक्ष्य, ध्यान का अन्तिम लक्ष्य, प्रार्थना का, पूजा का अन्तिम लक्ष्य एक बच रहे, छवि कोई न रहे। तो जब आप कीर्तन कर रहे हैं, तो छवि की फिक्र न करें, छवि आ जाय तो हटाने की भी फिक्र मत करें, छवि न आए तो लाने की भी फिक्र न करें। आप तो सिर्फ लीन होने की, डूबने की फिक्र करें, मिटने की फिक्र करें। जब आप एकाग्र करने की चेष्टा करते हैं, तो मन पर तनाव पड़ता है। तनाव बेचैनी पैदा करेगा। एकाग्र करने की चेष्टा ही मत करें, खोने की चेष्टा करें। जैसे बूंद सागर में डूब रही है, ऐसे आप विराट में डूब रहे हैं, निराकार में खो रहे हैं। जैसे दीये को कोई फूंककर बुझा दे और वह खो जाय शून्य में, ऐसे आप भी खो रहे हैं। लीन होने की चिन्ता करें, डूबने की चिन्ता करें, मिटने की चिन्ता करें। एकाग्र करने की चेष्टा मत करें, विसर्जित होने की करें—मेल्टिंग, जैसे बर्फ पिघल रही है।

एक ख्याल कर लें, जैसे बर्फ हो गए आप और पिघल रहे हैं और बहते जा रहे हैं और नदी में लीन होते जा रहे हैं। पिघलने की, खोने की, डूबने की—यह भाव-दशा अगर आपके कीर्तन में बनी रही, धीरे-धीरे नृत्य गहन होने लगेगा, धीरे-धीरे आवाज प्रगाढ़ होने लगेगी और धीरे-धीरे नृत्य के साथ आपके भीतर बहुत कुछ टूटने लगेगा, समाप्त होने लगेगा, वह जो अहंकार था वह गिरने लगेगा। कोई क्या कहेगा, कोई क्या सोचेगा, मैं क्या पागलपन कर रहा हूं—वह सब समाप्त होने लगेगा। धीरे, धीरे-धीरे आप भूल जाएंगे कि आप हैं, भूल जाएंगे कि जगत है। और जब यह विस्मरण का क्षण आ जाय कि न समझ में आए कि मैं कौन हूं, न समझ में आए कि चारों तरफ कौन हैं, तो समझना कि यह विस्मृति की शुरुआत हुई।

इस विस्मरण में, जगत की तरफ से इस विस्मरण में भीतर का स्मरण आना शुरू हो जाता है, तो जब जगत भूलने लगता है, तो परमात्मा याद आने लगता है। परमात्मा के याद आने का मतलब यह नहीं है कि कोई छवि याद आने लगती हो, परमात्मा के याद आने का मतलब यह है कि वह जो, जिसको विलियम जेम्स ने 'ओशनिक फीलिंग', कहा है समुद्र

होने की भाव-दशा, पूर्ण होने का भाव नहीं, समुद्र होने का भाव होने लगता है। फिर आप विराट हो जाते हैं। और फिर हवाएं चलती हैं, तो ऐसा नहीं कि आपके बाहर चल रही हैं, आपके भीतर चलती हैं। वृक्ष हिलते हैं तो आपके बाहर नहीं, आपके भीतर हिलते हैं। चांद-तारे आपके भीतर चलते हैं। आपके आसपास जो लोग नाच रहे हैं और कीर्तन कर रहे हैं, वे भी आपके बाहर नहीं रह जाते, आपके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। आप फैलकर बड़े हो जाते हैं। और आपके भीतर सब होने लगता है।

छबि की बहुत फिक्र न करें, आ जाय तो हटाने की भी चेष्टा मत करें, क्योंकि हटाने में भी फिर चेष्टा शुरू हो जाती है। आ जाय तो राजी, न आए तो राजी। अगर आप किसी छबि को प्रेम करते रहे हैं, तो वह आ जाएगी। अगर कृष्ण से आपका लगाव है, तो जब आप मस्त होंगे, तो पहली घटना यही घटेगी कि कृष्ण आपको दिखाई पड़ने लगेंगे। अगर आपका क्राइस्ट से प्रेम है, तो आपके मस्त होते ही पहली घटना—क्राइस्ट के पास आप पहुंच जाएंगे।

मजे से उनको रहने दें, उनको हटाने की भी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उन पर एकाग्र होने की भी कोई जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे वे भी खो जाएंगे। और जब वे भी खो जाएंगे तब निराकार प्रकट होता है—जहां राम भी खो जाते हैं, कृष्ण भी खो जाते हैं, बुद्ध भी, क्राइस्ट भी, क्योंकि वे हमारे अन्तिम पड़ाव हैं। इसे ठीक से समझ लें। जहां संसार समाप्त होता है, वहां वे खड़े हैं। क्राइस्ट, बुद्ध, कृष्ण, उनकी प्रतिमाएं आखिरी तख्ती हैं, जहां संसार समाप्त होता है वहां वे खड़े हैं। जब उनका भाव आता है, तो उसका अर्थ है कि अब हम किनारे आ गए। लेकिन उन तख्तियों को पकड़कर रुक नहीं जाना है। देखते रहना है और आगे, और आगे, और आगे, जहां वे भी खो जाएंगे, वहां लीन हो जाना है। देखते-देखते आनन्द से धीरे-धीरे सब छोड़ देना है। यह छोड़ने की घटना शरीर को छोड़ने से शुरू होती है। कीर्तन की यही मौज और आनन्द है कि आप शरीर को छोड़ दिए हैं।

लोग मुझसे पूछते हैं कि कोई व्यवस्था होनी चाहिए, कोई ढंग से नृत्य, कोई ताल, लय, यह सब व्यवस्था होनी चाहिए। व्यवस्था से कीर्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है। सच तो यह है कि कीर्तन व्यवस्था तोड़ने का एक

उपाय है कि आपके भीतर अब कोई व्यवस्था करने की चेष्टा नहीं है। आपने छोड़ दिया शरीर को, जैसा हो रहा है, आप होने दे रहे हैं। अब आप, आप बीच-बीच में नहीं आ रहे कि कैसा पैर उठाऊं, कैसा न पैर उठाऊं। अब जो हो रहा है, होने दे रहे हैं। और यह, यह छोड़ना शरीर का—पहला अनुभव है विसर्जन का। फिर मन को भी छोड़ देना है, जो हो रहा है होने देना है। धीरे-धीरे शरीर और मन अपने आप गति करने लगेंगे और आप सिर्फ साक्षी रह जाएंगे—अपने ही शरीर, अपने ही मन के।

मैं पढ़ रहा था, रूसी अन्तरिक्ष यात्री पैकोफ जब पहली दफा छत्तीस घंटे जमीन की परिधि में परिक्रमा किया, तो उसने अपने संस्मरण लिखे लौट कर। उसने अपनी डायरी में लिखा है—क्योंकि जैसे ही जमीन का गुरुत्वाकर्षण समाप्त होता है, तो हाथ-पैर निर्भार हो जाते हैं। अन्तरिक्ष में कोई वजन तो नहीं है, वजन तो आप में भी नहीं है। जमीन की कशिश की वजह से वजन मालूम पड़ता है। दो सौ मील, जमीन के पार जाने के बाद वजन समाप्त हो जाता है, आप निर्भार हो जाते हैं।

तो पैकोफ ने लिखा है कि जब मैं सोने लगा, तो बड़ी मुसीबत मालूम पड़ी। क्योंकि मेरा पूरा शरीर तो बेल्ट से बंधा था, लेकिन मेरे दोनों हाथ अधर में टंग जाते थे। मैं उनको खींचकर नीचे कर लेता। खींचकर नीचे कर लेता तब तो ठीक, लेकिन जैसे ही झपकी आनी शुरू होती, मेरा खिचाव बन्द हो जाता, हाथ दोनों फिर अधर में टंग जाते। उसने लिखा है कि बीच आधी रात में नींद खुली, अपने दोनों हाथ ऐसे टंगे हुए देखकर मुझे पहली दफे साक्षी भाव हुआ—कि मेरा शरीर, अपना ही शरीर अपने बस के बाहर ऐसा अधर में टंगा हुआ!

कीर्तन की गहराई में जब शरीर को आप बिल्कुल छोड़ देते हैं—उन्मुक्त, और जो होता है होने देते हैं, तत्क्षण आपको भीतर लगता है कि मैं शरीर से अलग हूं। अब शरीर अपनी गति से चल रहा है। शरीर अपनी गति कर रहा है, मैं देख रहा हूं। जैसा पेकोफ को हुआ होगा—ऐसा कीर्तन में आपको सहज ही हो सकता है।

और बड़े मजे की बात है कि आज नहीं कल अन्तरिक्ष यात्रा को हम आत्म-साधना के लिए उपयोग में ला सकेंगे। और अतीत में साधकों को जो

काम वर्षों तक करके हल होता था, वह अंतरिक्ष में साधक को घंटों में भी हो जा सकता है। क्योंकि जमीन पर रहकर 'मैं शरीर नहीं हूं'—इस भाव का अनुभव करने में वर्षों लग जाते हैं; क्योंकि जमीन पूरे वक्त ख्याल दिलाती है कि तुम शरीर हो। इसलिए हमारा साधक हिमालय के पहाड़ पर दूर जाता था, ऊंचाई पर। जितनी ऊंचाई पर जाता था, जमीन से जितना दूर, उतना निर्भार होना आसान हो जाता था। इसलिए हमने कैलाश खोजा था। लेकिन अब कैलाश छोटी-मोटी जगह है। अब हम अंतरिक्ष में जमीन को बिल्कुल छोड़ सकते हैं। और जब अंतरिक्ष यान में किसी साधक का शरीर हवा में ऐसे उड़ रहा हो, जैसे कि गुब्बारा गैस का भरा हुआ हवा में होता है, तब यह अनुभव करना बिल्कुल आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं।

कीर्तन आपको निर्भार कर जाता है, शरीर को आप छोड़ देते हैं, बच्चे की तरह। कभी-कभी तो नृत्य बड़ा क्रांतिकारी काम कर देता है। सूफियों में दरवेश नृत्य की व्यवस्था है। दरवेश नृत्य वैसा होता है, जैसे बच्चे चक्कर लगाते हैं, एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी करते हैं। तो दरवेश नृत्य में एक ही जगह खड़े होकर फिरकनी की तरह चक्कर लगाया जाता है। जब आप जोर से एक ही जगह खड़े होकर चक्कर लगाते हैं, सिर घूमने लगता है, चक्कर मालूम होता है, लगता है गिर जाऊंगा, गिर जाऊंगा। लेकिन अगर आप गिरें न और लगाये चले जाएं, तो थोड़ी देर में आपको पता लगेगा कि शरीर चक्कर लगा रहा है और आप खड़े हो गए। छोटे बच्चों को बहुत मजा आता है। मां-बाप रोकते हैं, मत करो चक्कर आ जाएगा। मत रोकना, क्योंकि छोटे बच्चों को जो मजा आता है फिरकनी मारने में—वह मजा थोड़े से आत्मा के सुख का ही है। क्योंकि फिरकनी मारने में हमको लगता है कि मैं शरीर नहीं हूं। शरीर घूमने लगता है, यन्त्र की तरह, और बीच में वो खड़े हो जाते हैं। बच्चे निर्दोष हैं, उनको यह जल्दी हो जाता है।

नृत्य भी आपको बचपन में ले जाता है। कीर्तन आपको बच्चे की तरह सरल कर देता है। जो हो रहा है, होने देना है। और भीतर सजग, शांत देखते रहना है। यह साक्षी भाव बना रहे और अपने को विसर्जित करने की धारणा बनी रहे तो आपका कीर्तन सफल हो जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

"हे परमेश्वर ! सखा ऐसा मानकर, आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, मेरे द्वारा प्रेम से अथवा प्रमाद से भी, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखे ! इस प्रकार जो कुछ हठपूर्वक कहा गया है और हे अच्युत ! आप हंसी के लिए विहार, शैय्या, आसन और भोजनादि को ले अकेले अथवा सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं, वे सब अपराध, अप्रमेह स्वरूप ! आपसे मैं क्षमा कराता हूं।"

यह बड़ी मधुर बात है—बहुत मीठी, अत्यन्त आन्तरिक। जिस दिन अर्जुन को दिखाई पड़ा है कृष्ण का विराट होना, उनका परमात्मा होना, उस दिन स्वाभाविक है कि उनका मन अनेक-अनेक पीड़ाओं, अनेक-अनेक शरमों, अपराध के भाव से भर जाए। क्योंकि इन्हीं कृष्ण को अनेक बार कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा है, हे यादव, हे मित्र, हे सखा, इस विराट को मित्र की तरह व्यवहार किया है। आज सोचकर भी भय लगता है। आज सोचकर भी उसे लगता है कि मैंने क्या किया, क्या समझा मैंने उन्हें अब तक और मैंने कैसा व्यवहार किया। काश ! मुझे पता होता कि क्या छिपा है उनके भीतर, तो ऐसा व्यवहार मैं कभी न करता। लेकिन बड़े मजे की बात है कि यह अर्जुन को भी लगता हो—ऐसा नहीं है। अगर आप पत्नी हैं, या अगर आप पति हैं, या पिता हैं, या बेटा हैं, जिस दिन आपको परमात्मा का अनुभव होगा, उस दिन आपको भी लगेगा कि पत्नी के साथ मैंने कल तक कैसे व्यवहार किया। क्योंकि तब आपको पत्नी में भी वही दिखाई पड़ जायगा। तब आपको लगेगा मैंने नौकर के साथ कैसा व्यवहार किया, क्योंकि तब आपको नौकर में भी वही दिखाई पड़ जाएगा। तब आपको लगेगा अब तक जो भी मैंने किया, वह नासमझी थी; क्योंकि जिसको मैं जो समझ रहा था वह, वह है ही नहीं। यह तो प्रतीक है अर्जुन का यह कहना, यह सभी अनुभवियों को अनुभव होगा।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि जब उनकी गीतांजलि प्रकाशित हुई और उन्हें नोबेल प्राइज मिली। नोबेल प्राइज जब तक न मिली थी तब तक तो कोई फिक्र उनकी करता नहीं था। जब नोबेल प्राइज मिली तो स्वागत-समारोह शुरू हो गए। सारे कलकत्ते ने स्वागत किया। विरोधी भी मित्र बन गए। लेकिन एक बूढ़ा उनके पड़ोस में था, जो नोबेल प्राइज से जरा

भी न डरा। और वह बूढ़ा उन्हें बड़ा परेशान किए हुए था कि जब उनकी कविताएं छपती थीं, तो वह बूढ़ा अक्सर उसको रास्ते में मिल जाता आते-जाते, और कहता कि सुन, परमात्मा का अनुभव हुआ है। क्योंकि वे परमात्मा के बाबत कविताएं लिख रहे थे। ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था। कविता ठीक है या नहीं, यह अलग बात है। लेकिन ऐसा उनसे कोई भी नहीं पूछता था कि परमात्मा का अनुभव हुआ हो। बूढ़ा ऐसे ही तेज आंख से देखता था कि रवीन्द्रनाथ ने कहा है कि उस आदमी से जितना मैं डरता था किसी से भी नहीं डरता था। और हिम्मत भी नहीं पड़ती थी कहने की कि अनुभव हुआ है, क्योंकि अनुभव हुआ भी नहीं था। और उससे कहने में कोई सार भी नहीं था, उसकी आंख ही डरा देती थी।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि मैंने बड़े प्रेम के गीत गाए, बड़ी मित्रता के। लेकिन मेरे मन में उस बूढ़े के प्रति कोई सद्भाव कभी नहीं जन्मा। मैं सारे जगत के प्रति प्रेम का गीत गा सकता था, उस बूढ़े को छोड़कर। वह जो बूढ़ा था, वह पड़ोस में ही रहता था। और उसका जो व्यवहार था, वह ऐसा था कि बड़ा कठोर था। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि लेकिन एक दिन सारी बात बदल गई। जा रहा था समुद्र के किनारे, वर्षा हुई थी थोड़ी, और रास्ते के किनारे डबरों में पानी भर गया था। सांझ उतर गई। चांद आ गया। पूरे चांद की रात थी। डबरों में, गन्दे डबरों में सड़क के किनारे चांद की छबि बनने लगी, बड़ी प्यारी! फिर सागर के किनारे जाकर देखा चांद को। फिर अचानक एक ख्याल आया कि चांद तो चांद ही है। चाहे सागर का स्वच्छ जल हो और चाहे सड़क के किनारे बने गन्दे डबरे का गन्दा जल हो, चांद के प्रतिबिम्ब में तो कोई गन्दगी नहीं होती, चाहे वह गन्दे डबरे में बन रहा हो और चाहे स्वच्छ जल में बन रहा हो। प्रतिबिम्ब तो गन्दा नहीं होता, गन्दे जल के कारण। इस ख्याल के आते ही समाधि लग गई। यह ख्याल अनूठा है। इसका मतलब हुआ कि सीमाएं सब टूट गईं और प्रतिबिम्ब कहीं भी बन रहा हो उसका, चाहे राम में चाहे रावण में, बराबर हो गया। समाधि लग गई, आनन्द से हृदय भर गया, नाचता हुआ घर की तरफ लौटने लगा। रास्ते पर वह आदमी मिला। आज मुझे डरा नहीं पाया। आज उसे देखकर भी मैं आनंदित हुआ। उसे मैंने गले लगा लिया। आज उसने मेरी आंख में झांककर देखा, लेकिन मुझसे कहा नहीं कि क्या ईश्वर का अनुभव हुआ है। उसने कहा, तो अच्छा हो गया!

मालूम होता है हो गया। रवीन्द्रनाथ ने कहा, उस दिन के बाद तीन दिन तक ऐसी दशा बनी रही कि जो भी मिल जाय तो लगे कि उसे गले लगा लूं—मित्र हो कि शत्रु हो, परिचित-अपरिचित, नौकर, मित्र कोई भी हो। फिर आदमी चुक गये तो गाय, घोड़े, उनके भी गले मिलना होने लगा। फिर वे भी चुक गये तो वृक्ष, पत्थर, दीवार; और रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि दीवार से मिलकर भी वही अनुभव होने जगा, जो अपनी प्रेयसी से मिल कर हो।

लेकिन उस दिन लगा कि अब तक जो मैंने लोगों से व्यवहार किया है, वह बड़ा बुरा था। जाकर क्षमा मांगने गया उस बूढ़े से कि मुझे माफ कर दो, मैं तुम्हें पहचान ही न पाया कि तुम कौन हो। आज पहचान पाया हूं, तो सबसे क्षमा मांगने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जिस दिन आपको भी थोड़ी-सी झलक मिलेगी, सिवाय क्षमा मांगने के और कोई उपाय नहीं रह जाएगा; क्योंकि चारों तरफ वही विराट मौजूद है और हम उसके साथ जो व्यवहार कर रहे हैं, वह बड़ा ओछा है। पर होगा ही व्यवहार ओछा, क्योंकि दृष्टि ओछी है, क्योंकि वह विराट तो कहीं दिखता ही नहीं है।

ऐसा मैंने सुना है, एक सूफी कथा है। एक सम्राट अपने बेटे पर नाराज हो गया, क्योंकि बेटा कुछ उपद्रवी, हठधर्मी था, उच्छृङ्खल था। नाराज इतना हो गया कि एक दिन उसने बेटे को राज्य का निकाला दे दिया। उसे कहा कि तू राज्य को छोड़कर चला जा। एक ही बेटा था। बड़ा कष्ट था, लेकिन छोड़ना पड़ा। बाप की भी जिद थी, बेटा भी जिद्दी था, बाप का ही बेटा था, एक से ही ढंग थे। दोनों अहंकारी थे। बेटे ने भी छोड़ दिया। राज्य की सीमा में मत टिकना, तो राज्य की सीमा में न टिककर दूसरे राज्य में चला गया। राजा का बेटा था। कभी जमीन पर पैदल भी नहीं चला था, कभी कोई काम भी नहीं किया था। तो सिवाय भीख मांगने के कोई उपाय नहीं रहा। थोड़ा बहुत तम्बूरा बजाना जानता था, थोड़ा गीत-वीत का शौक था तो गीत गाकर, तम्बूरा बजाकर भीख मांगने लगा।

दस वर्ष बीत गए। बाप बूढ़ा हुआ, मरने के करीब आया, तो अब उसे लगा कि क्या करें उस बेटे को खोजा जाय। तो वजीरों को भेजा कि

कहीं भी मिले शीघ्र ले आओ। मौत मेरी करीब है, वही मालिक है, जैसा भी है। उस दिन जब उस छोटे से गांव में जहां एक चाय की दूकान के सामने वह भावी सम्राट भीख मांग रहा था। गर्मी के दिन थे और आग बरस रही थी और रास्ते तप रहे थे। उन पर पैदल नंगे चलना मुश्किल था। उसके जूते नहीं थे। तो वह भीख मांग रहा था एक छोटे से बर्तन में, और लोगों से कह रहा था कि जूते के लिए मुझे पैसे चाहिए। होटल में जो लोग चाय-वाय पी रहे थे गरीब-गुरबे वे भी उसको पैसे दे जाते, थोड़ी बहुत चिल्लर उसके बर्तन में थी। वजीर का रथ आकर रुका। वजीर ने देखा, पहचान गया, वस्त्र अब भी वही थे, दस साल पहले पहनकर जो घर से निकला था। फट गए थे, चीथड़े हो गये थे, गन्दे हो गए थे। पहचानना मुश्किल था कि ये सम्राट के वस्त्र हैं। लेकिन पहचान गया मन्त्री। आंखें वही थीं, चेहरा काला पड़ गया था, शरीर सूख गया था। हाथ में भिक्षा-पात्र था, पैर में फफोले थे। मंत्री नीचे उतरा। वह भिक्षा-पात्र फैलाए हुए था, पास में रथ आकर रुका है—राजकुमार ने सोचा कि भिक्षा-पात्र इस तरफ करूं—देखा मंत्री है, हाथ से भिक्षा-पात्र छूट गया। एक क्षण में दस साल मिट गए। मंत्री चरण पर गिर पड़ा और कहा कि महाराज वापिस चलें। भीड़ इकट्ठी हो गई, गांव सब आ गया पास, लोग पैरों पर गिरने लगे। वे, जिनके सामने वह भीख मांग रहा था, जो अभी भीख देने से कतरा रहे थे, वे उसके पैरों पर गिरने लगे, कहने लगे माफ कर देना, हमें क्या पता था। एक क्षण में सब बदल गया, सारे गांव का रुख। एक क्षण में बदल गया राजकुमार का रुख भी। अभी वह भिखारी था, एक क्षण में सम्राट हो गया। कपड़े वही रहे, शरीर वही रहा, आँखें बदल गईं, रौनक और हो गई।

जिन्दगी, जैसा हम उसे देख रहे हैं, हमारी आंख, जो दिखाई पड़ रही है जिन्दगी, हमारी आंख के कारण। आंख बदल जाय, सारी जिन्दगी बदल जाय। और तब सिवाय क्षमा मांगने के कुछ भी न रह जाएगा। वह पूरा गांव पैरों पर गिरने लगा कि क्षमा कर देना, बहुत भूलें हुई होंगी हमसे। निश्चित हुई हैं। हमने तुम्हें भिखारी समझा यही बड़ी भूल थी।

अर्जुन यही कह रहा है कि हमने तुम्हें मित्र समझा, यही बड़ी भूल थी। और मित्र समझ कर हमने वे बातें कही होंगी जो मित्रता में कह दी जाती हैं। और मित्र एक दूसरे को गाली भी दे देते हैं। सच तो यह है कि

जब तक गाली देने का सम्बन्ध न हो लोग मित्रता ही नहीं समझते। जब तक एक दूसरे को गाली न देने लगें तब तक समझते हैं अभी पराए हैं, अभी कोई अपनापन नहीं है। तो मित्र समझा है। कभी कहा होगा—ए कृष्ण! कभी कहा होगा—ए यादव! कभी कहा होगा—ए मित्र! क्षमा कर देना। हठपूर्वक बहुत-सी बातें कही होंगी। हठपूर्वक अपनी बातें मनवानी चाही होंगी। तुम्हारी बात झुठलायी होगी, विवाद किया होगा, तुम गलत हो—ऐसा भी कहा होगा। तुम गलत हो—ऐसा सिद्ध भी किया होगा। अवहेलना की होगी, ठुकराया होगा तुम्हारे विचार को, और हे अच्युत! हंसी के लिए ही सही, तुमसे वे बातें कही होंगी जो नहीं कहनी चाहिए थीं। विहार में, शैय्या पर, आसन में, भोजन करते वक्त, मित्रों के साथ, भीड़ में, एकान्त में, दूसरों के सामने; न मालूम क्या-क्या कहा होगा, न मालूम किस-किस भांति आपको अपमानित किया होगा, या दूसरे अपमानित कर रहे होंगे तो सहमति भरी होगी, विरोध न किया होगा। यह सब अपराध अप्रमेह स्वरूप, अन्यान्य प्रभाव वाले, आपसे मैं क्षमा कराता हूं। आपको अब जैसा देख रहा हूं और अब तक जैसा आपको देखा, इन दोनों के बीच जमीन-आसमान का भेद पड़ गया है। तो जो व्यवहार मैंने आपसे किए थे अनजान में, न जानते हुए आपको, न पहचानते हुए आपको—उन सबके लिए मुझे माफ कर देना।

इस जगत से भी हम माफी मांगेंगे, क्योंकि जगत परमात्मा है। और हम जो व्यवहार उससे कर रहे हैं, वह परमात्मा के साथ किया गया व्यवहार नहीं है। अगर मानकर भी चलें आप, अभी आपको पता भी नहीं है, सिर्फ मानकर चलें कि यह जगत परमात्मा है और चौबीस घंटे के लिए प्रत्येक व्यक्ति से ऐसा व्यवहार करने लगें जैसे वह परमात्मा है, तो आप पाएंगे कि आप बदलना शुरू हो गए, आप दूसरे आदमी हो गए, आपके भीतर गुण-धर्म बदल जाएगा।

सूफियों की एक परम्परा है, एक साधना की विधि है कि जो भी दिखाई पड़े—उसे परमात्मा को मानकर ही चलना। अनुभव न हो तो भी, कल्पना करनी पड़े तो भी; क्योंकि वह कल्पना एक न एक दिन सत्य सिद्ध होगी। और जिस दिन सत्य सिद्ध होगी उस दिन किसी से क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी।

मंसूर ने कहा है कि अगर परमात्मा भी मुझे मिल जाय, तो मुझे क्षमा नहीं मांगनी पड़ेगी; क्योंकि मैंने उसके सिवाय किसी में और कुछ देखा ही नहीं है।

अर्जुन को मांगनी पड़ रही है, क्योंकि अब तक उसने परमात्मा में भी कृष्ण को देखा है, एक मित्र को देखा है, एक सखा को देखा है। फिर मित्र के साथ जो सम्बन्ध है, ध्यान रहे, मित्रता कितनी ही गहरी हो उसमें शत्रुता मौजूद रहती है। और मित्रता चाहे कितनी ही निकट की हो उसमें एक दूरी तो रहती ही है। मन का जो द्वंद्व है वह सब पहलुओं पर प्रवेश करता है। आप किसी को शत्रु नहीं बना सकते सीधा। शत्रु बनाना हो तो पहले मित्र बनाना जरूरी है। या कि आप किसी को सीधा शत्रु बना सकते हैं? सीधा शत्रु बनाने का कोई उपाय नहीं है। शत्रुता भी आती है तो मित्रता के द्वार से ही आती है। असल में शत्रुता मित्रता में ही छिपी रहती है। इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है, जिनको शत्रु न बनाने हों, उनको मित्र बनाने से बचना चाहिए। अगर आप मित्र बनाएंगे तो शत्रु भी बनेंगे ही। क्योंकि मित्र और शत्रु कोई दो चीजें नहीं हैं, शायद एक ही घटना के दो छोर हैं, दो सघनताएं हैं एक ही तरंग की।

तो अर्जुन यह कह रहा है कि मित्रता में बहुत बार शत्रुता भी की है, और मित्रता में बहुत समय ऐसे वचन भी कहे हैं, जो शत्रु से भी नहीं कहने चाहिए। उन सबकी मैं क्षमा चाहता हूं।

"हे विश्वेश्वर! आप इस चराचर जगत के पिता और गुरु से भी बड़े गुरु एवम् अति पूजनीय हैं। हे अतिशय प्रभाव वाले, तीनों लोकों में आपके समान दूसरा कोई भी नहीं है, अधिक तो होवे कैसे। इससे हे प्रभो! मैं शरीर को अच्छी प्रकार चरणों में रखकर और प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूं। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, और सखा जैसे सखा के, और पति जैसे प्रिय स्त्री के—वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने के लिए योग्य हैं।"

"मैं जानता हूं कि आप क्षमा कर देंगे। और मैं जानता हूं कि आप बुरा न लेंगे—अतीत में जो हुआ है। मैं जानता हूं कि आप महा क्षमावान हैं और जैसे प्रियजन को कोई क्षमा कर दे, आप मुझे कर देंगे। फिर भी मैं

क्षमा मांगता हूं, शरीर को ठीक से चरणों में रखकर''—इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हमें ख्याल नहीं है कि शरीर की प्रत्येक अवस्था, मन की अवस्था से जुड़ी है। शरीर और मन ऐसी दो चीजें नहीं हैं। इसलिए आज तो विज्ञान 'बाडी एण्ड माइंड'—शरीर और मन—ऐसा न कहकर 'साइको-सोमेटिक' —मनोशरीर या शरीरमन—ऐसा एक ही शब्द का प्रयोग करने लगा है। और ठीक है, क्योंकि शरीर और मन एक साथ हैं और प्रत्येक में कुछ भी घटित हो दूसरे में प्रभावित होता है। जैसे कभी सोचें।

पश्चिम में दो विचारक हुए—लेंगे और विलियम जेम्स। उन्होंने एक सिद्धांत विकसित किया था—जेम्सलेंगे-सिद्धांत। वह उल्टी बात कहता है सिद्धांत, लेकिन बड़ी महत्वपूर्ण। आम तौर से हम समझते हैं कि आदमी भयभीत होता है इसलिए भागता है। जेम्सलेंगे कहते हैं, भागता है इसलिए भयभीत होता है। आमतौर से हम समझते हैं आदमी प्रसन्न होता है इसलिए हंसता है। जेम्सलेंगे कहते हैं कि हंसता है इसलिए प्रसन्न होता है। और उनका कहना है कि अगर यह बात ठीक नहीं है, तो आप बिना हंसे प्रसन्न होकर बता दीजिये; या बिना भागे भयभीत होकर बता दीजिए। उनकी बात भी सच है। आधी सच है, आधी आम आदमी की बात भी सच है। असल में भय और भागना दो चीजें नहीं हैं। भय मन है और भागना शरीर है। प्रसन्नता और हंसी दो चीजें नहीं हैं। प्रसन्नता मन है और हंसी शरीर है। और शरीर और मन एक दूसरे को तत्क्षण प्रभावित करते हैं, नहीं तो शराब पीकर आपका मन बेहोश नहीं होगा। शराब तो जाती है शरीर में मन कैसे बेहोश होगा! शराब मजे से पीते रहिये। शरीर को नुकसान होगा तो होगा, मन को कोई नुकसान नहीं होगा; लेकिन मन तत्क्षण बेहोश हो जाता है। और जब आपका मन दुखी होता है तो शरीर भी रुग्ण हो जाता है।

अब तो शरीर-शास्त्री कहते हैं कि जब मन दुखी होता है तो शरीर की रेजिस्टेंस—प्रतिरोधक शक्ति—कम हो जाती है। अगर मलेरिया के कीटाणु फैले हुए हैं, तो जो आदमी मन में दुखी हो, उसको जल्दी पकड़ लेंगे; और जो मन में प्रसन्न हो, उसको नहीं पकड़ेंगे। आप जानकर हैरान होंगे कि प्लेग फैली हुई है, सबको पकड़ रही है और डाक्टर दिन-रात प्लेग में

काम कर रहा है, उसको नहीं पकड़ रही। कारण क्या है? डाक्टर अति प्रसन्न है अपने काम से। वह जो सेवा कर रहा है उससे आनन्दित है। उसे प्लेग कोई बीमारी नहीं है, एक प्रयोग है। उसे प्लेग जो है, वह कोई खतरा नहीं है, बल्कि एक चुनौती है, एक संघर्ष है। जिसमें वह जूझ रहा है। वह प्रसन्नचित्त है, वह आनन्दित है, वह बीमार नहीं पड़ेगा।

क्यों? क्योंकि शरीर की प्रतिरोधक शक्ति, रेजिस्टेंस, जब आप प्रसन्न होते हैं तब ज्यादा होती है, जब आप दीन, दुखी, पीड़ित होते हैं भीतर तो कम हो जाती है। कीटाणु भी बीमारियों के आप पर तब तक हमला नहीं कर सकते जब तक आप दरवाजा न दें कि आओ, मैं तैयार हूं। और जब आप इतने प्रसन्नता से भरे होते हैं तो चारों तरफ आपके एक आभा होती है जिसमें कीटाणु प्रवेश नहीं कर सकते। चौबीस घंटे में बीमारी पकड़ने के घंटे अलग हैं। और अब आदमी के भीतर की जो खोज होती है, उससे पता चलता है कि चौबीस घंटे में कुछ समय के लिए आप पीक अवर में होते हैं, शिखर पर होते हैं अपनी प्रसन्नता के। कोई क्षण में, चौबीस घंटे में एक दफा आप बिल्कुल नादिर, नीचे, आखिरी अवस्था में होते हैं। उस आखिरी अवस्था में बीमारी आसानी से पकड़ती है और उस शिखर पर बीमारी कभी नहीं पकड़ती। वह जो शिखर का क्षण है आपके भीतर प्रसन्नता का, वह शरीर और मन का एक ही है, वह जो खाई का क्षण है, वह भी एक ही है। शरीर और मन जुड़े हैं। आप जब किसी के प्रति क्रोध से भरते हैं तो आपकी मुट्ठियां भिचने लगती हैं, और दांत बन्द होने लगते हैं, और आंखें सुर्ख हो जाती हैं, और आपके शरीर में एड्रिनल और दूसरे तत्व फैलने लगते हैं खून में, जो जहर का काम करते हैं—जो आपको पागलपन से भरते हैं। अब आपका शरीर तैयार हो रहा है। आपको पता है कि क्यों मुट्ठियां भिचने लगती हैं? क्यों दांत कसमाने लगते हैं?

आदमी भी जानवर रहा है। और जानवर जब क्रोध से भरता है तो नाखून से चीर-फाड़ डालता है, दांतों से काट डालता है। आदमी भी जानवर रहा है। उसके शरीर का ढंग तो अब भी जानवर का ही है। इसलिए दांत भिचने लगते हैं, हाथ बंधने लगते हैं और शरीर काम शुरू कर देता है, जहर उनमें फैल जाता है, कि अब आप किसी की हत्या कर सकते हैं। आपको पता है क्रोध में आप इतना बड़ा पत्थर उठा सकते हैं, जो आप शान्ति में

कभी नहीं उठा सकते, क्योंकि आप पागल हैं। इस वक्त आप होश में नहीं हैं, इस वक्त कुछ भी हो सकता है।

जब क्रोध में ऐसा होता है तो प्रेम में इससे उल्टा होता है। जब आप प्रेम से भरते हैं तब आपको पता है, आप बिल्कुल रिलेक्स्ड हो जाते हैं, सारा शरीर शिथिल हो जाता है, जैसे शरीर को अब कोई भय नहीं है। क्रोध में शरीर तन जाता है, प्रेम में शिथिल हो जाता है। जब आप किसी के आलिंगन में होते हैं प्रेम से भरे हुए, तो आप छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं; जैसे वह अपनी मां की छाती से लगा हो—बिल्कुल शिथिल, लुन्ज-पुन्ज। अब आपके शरीर में जैसे कोई तनाव नहीं है कहीं। मन, शरीर एक साथ बदलते चले जाते हैं। आप कभी तने रहकर प्रेम करने की कोशिश करें तब आपको पता चल जाएगा, असम्भव है। या कभी ढीले होकर क्रोध करने की कोशिश करें तो पता चल जाएगा, असम्भव है।

कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो आपका मन होता है—निकालूं जूता और दे दूं सिर पर। मगर क्यों ऐसा होता है? और ऐसा एक मुल्क में नहीं होता है, सारी दुनिया में होता है। एक जाति में नहीं होता, सब जातियों में होता है। एक धर्म में नहीं होता, सब धर्मों में होता है। दुनिया के किसी कोने में कितने ही सांस्कृतिक फर्क हों, लेकिन जब आप किसी को अपमानित करना चाहते हैं, तो अपना जूता उसके सिर पर रखना चाहते हैं।

असल में जूता तो केवल सिम्बल है, आप अपना पैर रखना चाहते हैं; लेकिन वह जरा अड़चन का काम है। किसी के सिर पर पैर रखना जरा उपद्रव का काम है, उसके लिए काफी जिमनास्टिक, योगासन इत्यादि का अभ्यास चाहिए। एकदम से रखना आसान नहीं होगा, उसके लिए सर्कस का अनुभव चाहिए। तो फिर सिम्बल का काम करते हैं जूता सिम्बल का काम करता है कि हम जूते को सिर पर मार देते हैं। हम उससे यह कह रहे हैं कि तुम्हारा सिर, हमारे पैर। लेकिन क्या इसका मतलब है? सारी दुनिया में यह भाव एकसा है।

इससे विपरीत श्रद्धा है—जब हम किसी के चरणों में सिर रख देना चाहते हैं। यह बड़े मजे की बात है कि सारी दुनिया में अपमान करने के

लिए सिर पर पैर रखने की भावना है। लेकिन सम्मान करने के लिए सिर्फ भारत में पैर पर सिर रखने की धारणा है। इस लिहाज से भारत की पकड़ गहरी है आदमी के मन के बाबत। इसका यह मतलब हुआ कि सारी दुनिया में अपमान करने की व्यवस्था तो हमने खोज ली है, सम्मान करने की व्यवस्था नहीं खोज पाए। और अगर यह बात सच है कि हर मुल्क में हर आदमी को अपमान की हालत में ऐसा भाव उठता है, तो दूसरी बात भी सच होनी चाहिए, कि श्रद्धा के क्षण में सिर किसी के पैर पर रख देने का भाव। यह भीतर जो घटना घटेगी, तभी।

इसका यह मतलब हुआ कि श्रद्धा को जितना हमने अनुभव किया है, संभवतः दुनिया में कोई मुल्क ने अनुभव नहीं किया है। अगर अनुभव करता तो यह प्रक्रिया घटित होती। क्योंकि अगर अनुभव करता तो कोई उपाय खोजना पड़ता जिससे श्रद्धा प्रकट हो सके। तो एक तो श्रद्धा की यह अभिव्यक्ति, क्षमा याचना के लिए। अर्जुन कह रहा है कि सब भांति आपके चरणों में अपने शरीर को रखकर मांगता हूं माफी, मुझे माफ कर दें।

लेकिन इतनी ही बात नहीं है, थोड़ा भीतर प्रवेश करें, तो सिर जब किसी के चरणों में रखा जाता है ...अभी जब बाडी इलेक्ट्रिसिटी पर काफी काम हो गया है, तो यह बात समझ में आ सकती है। आपको शायद अन्दाज न हो, लेकिन उपयोगी होगा समझना। और इस सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी देनी आपके फायदे की होगी। हर शरीर की गतिविधि विद्युत से चल रही है। आपका शरीर एक विद्युत यन्त्र है। उसमें विद्युत की तरंगें दौड़ रही हैं। आप एक बैटरी हैं, जिसमें विद्युत चल रही है—बहुत लो-वोल्टेज की, बहुत कम शक्ति की। लेकिन बड़ा अद्भुत यन्त्र है कि उतने लो वोल्टेज से सारा काम चल रहा है।

अभी इंग्लैंड में एक वैज्ञानिक ने कुछ तांबे की जालियां विकसित की हैं, वे काम की हैं। वह तांबे की जालियां आपके शरीर के नीचे रख देता है और आपके हाथों में और आपके पैरों में तांबे के तार बांध देता है। और आपके शरीर की ऋण विद्युत को आपके शरीर की धन विद्युत से जोड़ देता है। आपके भीतर जो निगेटिव, पाजिटिव पोल हैं विद्युत के—उनको जोड़ देता है। उनके जोड़ने से आप एकदम शांत होने लगते हैं, अब तो इसका अस्पतालों में इंग्लैंड के उपयोग हो रहा है। उसको जोड़ते ही आप शांत

होने लगते हैं। कितना ही अशांत आदमी हो, तीस मिनट में एकदम गहरी नींद में खो जाएगा; क्योंकि उसकी दोनों विद्युत शक्तियां एक दूसरे को शांत करने लगती हैं। अगर उल्टे तार जोड़ दिये जाएं, तो शान्त आदमी अशांत होने लगता है—उसके भीतर की विद्युत अस्त-व्यस्त होने लगती है। और यह एक आदमी का ही नहीं। अगर इसको और गहरा प्रयोग करना हो, तो एक स्त्री को एक जाली पर लिटा दिया जाय, एक जाली पर पुरुष को और उनके ऋण-धन को जोड़ दिया जाय तो और भी शीघ्रता से शान्ति होने लगती है।

आपको अपनी पत्नी या प्रेयसी के पास बैठकर जो शान्ति मिलती है, उसमें अध्यात्म बहुत कम, बिजली ही ज्यादा है। आपके ऋण, धन विद्युत जुड़ जाते हैं। और अगर प्रेम गहरा हो तो ज्यादा जुड़ जाती है, क्योंकि आप एक-दूसरे को ज्यादा से ज्यादा निकट लाना चाहते हैं। अगर प्रेम ज्यादा न हो, तो आप भले ही निकट हों—अपने को दूर रखना चाहते हैं। एक तरह का बचाव बना रहता है, वह बाधा बन जाती है। यह तो दस-पच्चीस लोगों के ग्रुप में भी प्रयोग किया जाता है। दस-पच्चीस लोगों को इकट्ठा जोड़ दिया जाता है एक शृङ्खला में, तब और भी जल्दी परिणाम होते हैं।

भारत इस रहस्य को किसी दूसरे कोने से सदा से जानता रहा है। गुरु के चरणों में सिर रखना, गुरु के साथ उसकी विद्युत का जोड़ है। उसके चरणों में सिर रखते ही गुरु की जो विद्युत धारा है, वह शिष्य में प्रवाहित होनी शुरू हो जाती है। और ध्यान रहे विद्युत को प्रवाहित होने के लिए दो ही जगहें हैं, या तो हाथ या पैर, अंगुलियां। नुकीला कोना चाहिए जहां से विद्युत बाहर जा सके। और जहां से विद्युत भीतर लेनी हो उसके लिए सिर से अच्छी कोई जगह नहीं है। उसके लिए गोल जगह चाहिए जहां से विद्युत ग्रहण की जा सके। रिसेप्टिविटी के लिए सिर बहुत अच्छा है, दान के लिए अंगुलियां बहुत अच्छी हैं। व्यवस्था पूरी यह थी, वह भी तो उन्होंने इंग्लैंड में अभी विद्युत यन्त्र बनाए और उसका फायदा लिया। हम हजारों साल से ले रहे हैं। व्यवस्था यह थी कि गुरु के चरणों में ठीक से सिर रख दें। सिर का मतलब है—रिसेप्टिव हिस्सा, ग्राहक हिस्सा और चरणों का अर्थ है—दान देने वाला हिस्सा। और गुरु अपने हाथों को सिर के ऊपर रख दे,

आशीर्वाद दे। तो गुरु दोनों तरफ से—पैर की अंगुलियों से, हाथ की अंगुलियों से दायक हो जाता है। और जो नीचे झुका है, उसकी तरफ आसानी से विद्युत बह सकती है। इसलिए शिष्य नीचे है, गुरु ऊपर है। अगर आपको सच में श्रद्धा का भाव जन्मा है, तो आप फौरन अनुभव करेंगे कि आपके सिर में अलग तरह की तरंगें गुरु के चरणों से प्रवाहित होनी शुरू हो गई हैं। और आपका सिर शांत हुआ जा रहा है। कोई चीज उसमें बह रही है और शान्त हो रही है।

मनुष्य का शरीर विद्युत यन्त्र है। अब तो विद्युत के छोटे यन्त्र भी बनाए गए हैं, जो आपके मस्तिष्क में लगा दिए जायं, तो वे धीमी गति से आपके मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंकेंगे। उन तरंगों से आप शान्त होने लगेंगे। नींद के लिए रूस ने ट्रेन्कोलाइजर करीब-करीब बन्द कर दिये हैं। उन्होंने विद्युत यन्त्रों का उपयोग शुरू कर दिया है। क्योंकि वे कहते हैं, ट्रेन्कोलाइजर तो भीतर जाकर शरीर को अस्त-व्यस्त भी करता है, विद्युत यन्त्र किसी तरह अस्त-व्यस्त नहीं करता और मनुष्य के शरीर में ही नहीं, पशुओं के शरीर में भी मस्तिष्क से अगर विद्युत डाली जाय, वे भी शान्त हो जाते हैं।

अभी एक अमरीकन विचारक साल्टर प्रयोग कर रहा था अपनी बिल्ली के ऊपर। मैं बहुत चकित हुआ। वह अपनी बिल्ली के मस्तिष्क में विद्युत की तरंगें फेंक रहा था और वैसी अवस्था पैदा कर रहा था, जिसको वैज्ञानिक अल्फा वेव्ज कहते हैं। मस्तिष्क में चार तरह की तरंगें हैं विद्युत की। एक तो वे तरंगें हैं, जो आप सामान्यतः सोच विचार में लगे होते हैं, तब चलती हैं, उनको नापने का उपाय है; क्योंकि प्रति सेकंड उनकी खास फ्रिक्वेंसी होती है। फिर उनसे बाद की तरंगें हैं, अल्फा उनका नाम है। जब आप शान्त सोये होते हैं, रिलेक्स्ड होते हैं, या ध्यान में होते हैं, तब अल्फा होती हैं। फिर उसके बाद की भी तरंगें हैं, जब आप बिल्कुल प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं, जहां स्वप्न भी नहीं होता। और उसके बाद की भी तरंगें हैं, जिनके बाबत अभी पश्चिम में कोई समझ पैदा नहीं हो सकी कि वह किसकी खबर देती हैं। ये तीन का तो पता चलता है। तो अब तो आप ध्यान में हैं या नहीं, इसको यन्त्र से नापा जा सकता है। यन्त्र बता देता है कि अल्फा तरंगें चल रही हैं, तो ध्यान में हैं।

तो साल्टर यह प्रयोग कर रहा था कि आदमी ही ध्यान में हो सकते हैं या जानवर भी ध्यान में पहुंचाए जा सकते हैं। तो एक बिल्ली को विद्युत की तरंगें देकर अल्फा की हालत में लाकर और बिल्ली को भूखा रखता था और जब उसमें अल्फा तरंगें आ जाती थीं, यन्त्र बताता कि अल्फा तरंगें आ गईं, तब उसको दूध, मिठाई देता था। तो बिल्ली तरकीब सीख गई कि जब अल्फा तरंगें मिलती हैं तभी उसको दूध, मिठाई मिलती है। जब उसको भूख लगती तो बिल्ली चुपचाप शान्त खड़े होकर आंख बन्द करके ध्यान करने लगती। जब उसको भूख लगती, क्योंकि उसको पता चल गया भीतर कि कब मन की कैसी हालत होती है तब मुझे दूध मिलता है, तो वह आंख बन्द करके खड़ी हो जाती और बिल्ली अल्फा तरंगें पैदा करने लगती बिना विद्युत की सहायता के। मुझे तो बहुत आशापूर्ण मालूम पड़ा, अगर बिल्ली कर सकती है, आप भी कर सकते हैं। ऐसी क्या मुश्किल है ?

अर्जुन कह रहा है कि चरणों में सिर रखकर आपसे प्रसन्न होने की प्रार्थना करता हूं, मुझे क्षमा कर दें और मैं जानता हूं कि आप तो क्षमा कर ही देंगे। लेकिन जो मैंने किया है अतीत में, वह मेरे ऊपर बोझ—उस बोझ से मुझे मुक्त हो जाना जरूरी है उसके लिए चरणों में सब छोड़ देता हूं।

● संकलन : *अरविन्दकुमार*, जबलपुर

● आवाहन

श्रद्धेय आत्मीय,

आपने 'युक्रांद' के भगवत् कार्य में सहयोग देकर उसकी दिव्य ज्योति प्रज्ज्वलित की है।

जून ७४ अंक के प्रकाशन के साथ 'युक्रांद' के प्रथम पांच वर्ष पूर्ण हो रहे हैं और भगवत् आशीष तथा आपके सहयोग से इस पुनीत कार्य को हम अनन्त जीवन-यात्रा पर ले जा सकें, इस हेतु पुन हम भगवत् आवाहन कर रहे हैं।

मूल्य वृद्धि की विवशता ने—जुलाई ७४ के अंक से हमें भी 'युक्रांद' के मूल्य में वृद्धि करने पर विवश किया है। फलत: इस पत्रिका का वार्षिक शुल्क हम १५/- रु० कर रहे हैं।

हमें आस्था है कि आप इस पावन कार्य में अपना उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग देंगे।
शुभकामनाओं सहित।

जबलपुर
८ जून, ७४

निवेदक :
'युक्रांद' परिवार

नोट— (१) कृपया आप अपनी आर्थिक सहायता की राशि बैंक-ड्राफ्ट/चेक/मनीआर्डर द्वारा भेजें—अरविन्दकुमार, संपादक : युक्रांद, जबलपुर के नाम तथा पते पर प्रेषित करें।

(२) हमारे सम्मानित वार्षिक सदस्य जो किन्हीं कारणों से सदस्य नहीं रह पाए हैं उन्हें पुन: मनीआर्डर फार्म सहित निवेदन प्रेषित है कि वे अपना नवीनीकरण करा लें।

(३) हमारे सम्मानित पांच वर्षीय सदस्य भी जिनका सदस्यता शुल्क इस अंक से समाप्त हो रहा है, निवेदन है कि अब ६०/- रु० अग्रिम भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें।

भगवान रजनीश दर्शन की अन्य पत्र-पत्रिकाएं

	प्रकाशन स्थल	वार्षिक मूल्य
१ आनंदिनी (हिन्दी-मासिक):	C/o २६३, माडल ग्राम, लुधियाना	१८-००
२ योग दीप (मराठी पाक्षिक):	C/o जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–?	१०-००
३ SANNYAS (English Bi-Monthly)	C/o Selprint, A. Z.,Industrial Area, Fergusson Road, Lower Parel, BOMBAY : 13	१८-००
४ "रजनीश-पत्रिका" (गुजराती मासिक)	जीवन-जागृति-केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद–९	१०-००

साहित्य प्राप्ति हेतु संपर्क स्थल :

(१) रजनीश पब्लिकेशंस प्रा. लि., द्वारा : सेलप्रिन्ट, ए टू जेड इंडस्ट्रियल स्टेट, लोअर परेल, फर्गुसन रोड, बम्बई–१३

(२) ईश्वर-समर्पण, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई ९ : फोन : ३२७००१

(३) स्वामी सत्य बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद-९, फोन : ७६५७३

(४) स्वामी अमृत बोधि सत्व, जीवन जागृति केन्द्र, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-१, फोन : २४१४८

(५) स्वामी आनन्द गौतम, जीवन जागृति केन्द्र, ४१६, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर-१

(६) अरविन्द कुमार, जीवन जागृति केन्द्र, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर फोन : २९५७

(७) स्वामी दयाल भारती, जीवन जागृति केन्द्र, कबूला पुल, सागर

(८) स्वामी निकलंक भारती, विजय गृह निर्माण सामग्री भंडार, गाडरवारा

(९) मोतीलाल बनारसीदास, बुक-सेलर्स एवं पब्लिशर्स, बंगलो रोड जवाहर नगर, दिल्ली-७

(१०) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राज पथ, पटना-४

(११) चंद्रकांत न० पटेल, आसोपालव, अपोजिट : बैंक आफ इंडिया, रावपुरा, बड़ौदा (गुज०)

★

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चिंतता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात ३–०० (आध्यात्मिक उपन्यास)
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

युक्तांद के बढ़ते चरण

प्रथम पांच वर्ष की भगवत् लीला

- प्रति वर्ष १,००० वार्षिक सदस्यों एवं अन्य हजारों प्रेमी-जनों को भगवान श्री की आनन्दमयी अमृत-वाणी का प्रसाद वितरण हुआ।
- भगवान श्री के साहित्य को मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर-प्रदेश के साहित्य-विक्रेताओं के माध्यम से जन-सुलभ बनाया गया।
- भगवान श्री के सान्निध्य में जो अमृत आशीष और दिव्य समाधिस्थ चेतना की अनुभूति होती है, उसे साधक प्रेमियों ने 'युक्तांद' में डूबकर अनुभव किया।

हम

आपकी इस अमृत-आनन्द में डूबने की

प्रतीक्षा में हैं।

★

'युक्तांद' की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु सम्पर्क करें :

संपादक : युक्तांद, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर (म. प्र.)